कोविद- त्रिलोक

— डॉ. राजेश दयालु राजेश

आदरणीय आत्मीय स्व
श्री विनय कुमार अवस्थी को
सस्नेह भेंट।
'रत्नेश'
१४-१०-६५

कवित्त-त्रिलोक

रचयिता

साहित्यश्री, राजेश दयालु 'राजेश'

एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक

दिव्या प्रकाशन

D-103/1, राजाजीपुरम्, लखनऊ-17

प्रकाशन-वर्ष—१९९४ ई०

मूल्य—४०.०० रुपया

मुद्रकः—

स्टार प्रिंटिंग प्रेस,
ई–१४७२, राजाजीपुरम्,
लखनऊ

त्रिलोक-दर्शन

आधुनिकयुगीन कवियों में श्री राजेश दयालु 'राजेश' ऐसे विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं, जिन्हें खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी, तीनों पर अच्छा अधिकार है। तीनों में इनकी एक-जैसी अबाध गति है। खड़ी बोली में 'चैतन्य-चन्द्रिका' महाकाव्य, 'सत्यनिष्ठ राम' (खण्डकाव्य), 'बालिका', 'नारी', 'सहस्रधारा', 'दोहा-शतक' और 'कवित्त-त्रिलोक', ब्रजभाषा में 'श्याम-रसमयी', 'दोहा-हजारा' और 'कवित्त-शतक', तथा अवधी में 'बरवै-हजारा' इनकी प्रतिनिधि कृतियाँ हैं। ये सभी अपनी-अपनी ऐसी विशिष्टताएँ रखती हैं जो हिन्दी-साहित्य में प्राय: सुलभ्य नहीं हैं। साहित्य के महामनीषी आरसी प्रसाद सिंह के मतानुसार 'राजेश जी अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार हैं। आप-जैसा प्रतिभाशाली कवि इस युग की सर्वोत्तम देन है, ऐसा आज नहीं तो कल सबको स्वीकार्य होगा'। वस्तुत: राजेश जी की काव्य-कान्ति अनुपमेय, अपरिमेय और अभूतपूर्व है।

तुलसी, रसखान, देव, मतिराम, पद्माकर-सदृश भक्तिकालीन और रीतिकालीन उद्भट कलाकारों की कवित्त-सवैया-परम्परा को आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर 'रत्नाकर' और 'रसाल' आदि ने आगे बढ़ाया। खड़ी बोली में भी श्रीधर पाठक, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' से लेकर अनूप शर्मा और योगेश दयालु आदि ने इस महती परम्परा में योगदान किया।

'कवित्त-त्रिलोक' राजेश दयालु 'राजेश' की खड़ी बोली की परमोत्कृष्ट मुक्तक कृति है, जिसमें कवित्त-सवैयात्मक तीन रचनाएँ रखी गयी हैं, 'कवित्त-वीथिका', 'चिता-मंगल' और 'रस-वर्षा'।

'कवित्त-वीथिका' को कवि ने भूलोक की संज्ञा दी है। क्योंकि इसमें भूतलगत विविध स्थितियों, परिस्थितियों, क्रियाकलापों, घटनाओं और समस्याओं का दिग्दर्शन कवि ने किया-कराया है। कहीं कवि रूपसौन्दर्यकृत आरक्षण को लक्षित करता है—

आप सुन्दरी हैं बस जानिये नियुक्त हुईं

कहीं श्रमिक के हृदयोद्गार गुम्फित करता है, कहीं दहेज-प्रथा के प्रति आक्रोश प्रकट करता है, कहीं धर्म की सबलता का प्रतिपादन करता है—

निर्बल नहीं है धर्म जिसको बचाओ तुम
जो है धर्म वह अपने ही में सबल है।

कहीं पाकिस्तान की प्रधान मन्त्री बेनज़ीर भुट्टो को चेतावनी देता है—

भोंड़ी तू बहुत ही है जान ले निगोड़ी ! गोड़ी
किस्मत स्वदेश की ही, छोड़ी जो न टेढ़ी चाल ।
भुट्टो ! पाक ने बेपाक छोड़ा जो इरादा नहीं,
भुट्टे की तरह भूनभान कर देंगे डाल ।।

कहीं भक्तिभाव में निमग्न होता है तो कहीं दाम्पत्य और परकीया शृंगारपरक भावापगा में हमें रसाप्लावित करता है ।

अंग चला रही हो मतवाले तो बाले ! खरे रस-रंग चलाना ।
हो वृषभानुकुमारिका तो जब अस्त हो भानु तभी स्मृति लाना ।।
गोरा है गात, गुमान तो होगा, कहीं मुझ श्याम को भूल न जाना ।
जीवन में तुम आ ही गयी हो, अजी ! वन में मिलने चली आना ।।

—सदृश सर्वांगसुष्ठ छन्दों की 'कवित्त-वीथिका' में भरमार है । इसकी चौथी पंक्ति का प्रथम भावार्थ यह है कि तुम जल में अर्थात् यमुना में तो आ ही गयी हो, यहाँ तक आ गयी हो तो अब निकट ही तो है वन, वन में भी आ कर दर्शन देना । दूसरा भाव यह भी है कि मेरे जीवन में तो आ गयी हो, अब तुमसे बिछुड़कर जो मैं अजीवन (निर्जीवप्राय) स्थिति में पहुँचूँगा, उसे ध्यान में ला कर मुझमें फिर जीवन डालने अवश्य चली आना ।

इस प्रकार विदग्ध अनुभूतिशील कवि की व्यापक दृष्टि और कलाप्रवीणता के अगणित आयामों ने 'कवित्त-वीथिका' को अनन्त काव्य-सौन्दर्य प्रदान किया है ।

'चिता-मंगल' में कवि द्वारा अपनी पुण्यस्मृता पत्नी विमला देवी की दिवंगति पर लिखे हुए घनाक्षरी-सवैये रखे गये हैं । मृत्यूपरान्त पार्थिव शरीर मिट्टी में मिल जाता है और निकटतम सम्बन्धी जनों के शोकसन्तप्त तन-मन-जीवन-प्राण अधोपात को प्राप्त करते हुए पाताल में धँस जाते हैं, अतः 'चिता-मंगल' को कवि ने पाताल-लोक का नाम दिया है ।

दिवंगता की महायात्रा, चिता-दाह, फूलों को हाँड़ी में नीम के नीचे रखा जाना, फिर उन्हें ले जाकर त्रिवेणी में प्रवाहित करने तक का बड़ा ही विशद सूक्ष्म और यथार्थ अंकन कवि ने किया है । जैसा कवि ने देखा, प्रियजनों के (माता, भ्राता आदि के) जो उद्गार सुने और जो अनुभव किया, वही बड़ी सादगी से अंकित किया है, अतः अंकन में बड़ी सहजता और मर्मस्पर्शिता है, यथा

मुख से कफ़न हटा अग्रज ने ऐसा कहा,
लो राजेश ! देख लो, नहीं तो पछताओगे ।
एक बार और चाहे देख लो विमल मुख,
फिर विमला का मुख देख नहीं पाओगे ।।

प्रणय का सागर समाया जिसमें था वह
रस का कलश एक हाँडी में समा गया।

× × × ×

आप तो चिता में जल करके भसम हुई,
हमें जलने को छोड़छाड़ के चली गयी।
थोड़ी सी वयस में कपाल फोड़वा के प्रिया,
भाग्य को हमारे फोड़फाड़ के चली गयी॥

× × × ×

भामे ! कहाँ मुझे छोड़ के तू गयी, तेरे बिना मैं अनाथ-सा हो गया।

कवि कहता है कि विगता भार्या के बिना अब

तृप्ति किसे होगी अवलोक के हमारा मुख,
तृषित दृगों से कौन देखेगा हमारी ओर ?

स्पष्टतया दाम्पत्य-जीवन में कवि की पैठ बड़ी गहरी है। पति चाहे जितना वयस्क या बूढ़ा हो, उसके मुखमण्डल को पत्नी अवश्य देखती है और प्रफुल्लता तथा परितोष प्राप्त करती है।

दिवंगता विमला की स्मृति के साथ पूर्व दिवंगता पुत्री निर्मला की भी याद करके माता कैसा प्रलाप करती है, देखिये—

कैसा हा ! विधाता, भाग्य कैसा, काल-चक्र कैसा,
पूछ लिये छोटे, बड़े-बूढ़े दिये रहने।
दोनो एक ठौर गयीं, मधुर-मधुर बातें
स्वर्ग में करेंगी अब दोनो बैठ बहनें॥

'चिता-मंगल' में जो विषाद निहित है, वह प्रिय-विरहजनित भी है और प्रिय की सुखक्षति की कल्पना से भी उद्भूत है। कवि का विरह करवटें बदल-बदलकर कराहने वाला न हो कर निर्मल, उच्च और समुज्ज्वल है, जिसके वर्णन में भारतीय नारी की महत्ता और भारतीय संस्कृति की उदात्तता का सन्निवेश हुआ है।

इस प्रकार करुण-शृंगार-मिश्रित करुण रस का अद्भुत परिपाक 'चिता-मंगल' में हुआ है। जैसा सर्वतोमुखो, उदात्त और मार्मिक चित्रण इसमें हुआ है, वह अभूतपूर्व है और लोकद्रष्टा राजेश जी की लेखनी से ही साध्य हो सका है। इसकी तुलना निराला की कृति 'सरोज-स्मृति' से की जा सकती है।

'चिता-मंगल' में लोकनीति, जीवन-दर्शन, रोदन-क्रन्दन, प्रलाप, प्रिय-गुण-चिन्तन, विषाद, तोष, संकल्प, व्यंग्य, दैन्य, वैषम्य, विवशता, अनन्यता,

औदार्य, ममत्व, अधिकार-बोध, त्याग, तपस्या, आस्था आदि अगणित गुणों को तो मधुराभिव्यक्ति मिली ही है, साथ ही इसमें कवि की अनुभूतिशीलता, गहरी पैठ, सूझ-बूझ, संगीत-लहरी, वर्ण-मैत्री, आलंकारिकता, चमत्कार-चातुर्य, भाव-भाषा-छन्दालंकरण, चित्रात्मकता, संकेतात्मकता, सार्थक शब्द-प्रयोग आदि अपरिमित काव्य-गुणों का चरम विकास भी दृष्टिगत होकर काव्य-मर्मज्ञों और जन-जन को आन्दोलित करता है। निश्चित ही 'चिता-मंगल' जैसी कृति पर हिन्दी-साहित्य गर्व कर सकता है।

'रस-वर्षा' को कवि ने आकाश-लोक कहा है, क्योंकि इसमें निर्मल निस्वार्थ आकाशचारी प्रेम के ऐसे भाव अभिव्यक्त हुए हैं, जिन्हें सामान्य विश्व-मानव धारण ही नहीं कर सकता है, व्यक्त कैसे करेगा ? यथा

तुझसे कुछ भी नहीं चाहते हैं, फिर भी तुझको हम चाहते हैं।

× × × ×

करनी कुछ तेरी भलाई हो तो घर तेरे अशंक मैं दौड़ लगाऊँ।
भला केवल तेरा निहारने को मुँह आऊँ तो क्या मुँह लेकर आऊँ ?

'रस-वर्षा' में कवि का निर्मल प्रेम ही शतशः मुखरित हुआ है। इसमें भोग-लिप्सा नहीं, यौवन-मदान्धता नहीं। इस प्रेम का ही धारक निर्भीक घोषणा कर सकता है—

लाख हजार मनुष्यों के सामने मैं तुझे टेर गले लगा लूँगा।

'रस-वर्षा' में उत्तरधारा में ही कुछ भाव प्रणयोद्दामता-मूलक रखे गये हैं, जो इसका गौण अंश है। विरहप्रधान 'रस-वर्षा' कवि की अपनी एक लघु सत्यकथा है, इसकी नायिका से वह स्वयं कहता है—

काम रहा मुझसे अटका तो मैं तेरे लिए रहा गण्य गुणाकर।
पाँच बजे मिलने को कहा गया, चार बजे खड़ी हो गयी आ कर॥

× × × ×

स्वार्थ के तू पिंजड़े से छुटी, शुकी-सी उड़ी, देती नहीं है दिखायी।

'रस-वर्षा' में एक प्रेमाहत हृदय के सात्त्विक उद्गारों का स्वाभाविक गुम्फन हुआ है। अत्यन्त अभिनवोच्च भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित इसकी अभिव्यञ्जनाएँ रस से सराबोर हैं—

आदर ही आदर दिखाती, प्यार कुछ नहीं,
पान मुझे देती हो, न रस-पान देती हो।

× × ×

प्यार की जो सजा दे दे वही कम, जो दे इनाम वही कम होगा।

'रस-वर्षा' में आधुनिकता का भी पुट दर्शनीय है, यथा

मेरी काल-बेल बजती है सोचता हूँ तब
चाही हुई स्कूटर सवारी तो न आ गयी।

इस स्कूटर-वाहिनी के बिछुड़ने पर तड़पता हुआ नायक रोदन-क्रन्दन करता रह जाता है—

हा ! कोई ऐसा हितैषी नहीं जो दिखा दे मुझे उस योषिता का मुख।

कलात्मकता में भी 'रस-वर्षा' के छन्द अद्वितीय बन पड़े हैं। निम्नांकित सवैया-युग्म में आद्यन्त शब्द-साम्य है, पर अन्वय-भेद से एक वियोगपरक हो गया है, एक संयोगपरक

विरहाग्नि सहा के रही, सह आके हुई वश 'हा' के सुवर्णलता।
न कहीं गुण सज्जित शील-निमज्जित, है उसकी छवि की समता ?
उसने दिन एक दिखायी न सुन्दर प्रेमापराध-क्षमा-क्षमता।
मिली निर्ममता ही किसीकी, नहीं मिलने को हुई ममता वमता॥

[वह मुझे विरहाग्नि सहा कर रही, मेरे साथ कहीं पड़ी भी तो सोचती रही कि हाय ! मैं कहाँ आ पड़ी। उसमें न गुण है न शील। उसके जैसी निष्ठुर छवि भला कहाँ है ? सफ़ाई के साथ मेरे प्रेमापराध को क्षमा करने की क्षमता उसने कभी न दिखायी। मुझे उसकी निर्ममता ही नसीब हुई, ममता वमता नहीं।]

विरहाग्नि सहा के रही सह आके, हुई वश 'हा' के सुवर्णलता।
न कहीं गुणसज्जित शीलनिमज्जित है उसकी छवि की समता॥
उसने दिन एक दिखायी न सुन्दर प्रेमापराध-क्षमा-क्षमता।
मिली निर्ममता ही किसीकी नहीं, मिलने को हुई ममता वमता॥

[कुछ दिन विरहाग्नि सहाने के पश्चात् वह स्वर्णकलेवरा मेरे साथ आ कर घुलमिल कर रही, मेरे हृदय के हाहाकार के वश हो गयी। उसके गुण और शील की कहीं समता नहीं। उसने एक दिन मेरा प्रेमापराध क्षमा करने की सुन्दर क्षमता दिखा ही दी न ? मुझे उसकी निर्ममता से ही पाला नहीं पड़ा रहा, उसकी ममता भी सुलभ हुई।]

संयत भाषा, छन्द-बन्धन-पटुता, वर्ण-मैत्री, उक्ति-वैचित्र्य, वाग्वैदग्ध्य, कल्पना-कौशल, चमत्कार-चातुर्य, आलंकारिकता, संगीत-लहरी, गहन अनुभूति, संयम, यथार्थता, शील-संकोच, दैन्य, विवशता, आत्मनिवेदन, अंतरंगता, स्पष्टवादिता, आह्वान, व्याजस्तवन, मनोरथ, क्लिष्ट कर्म, दर्शनासक्ति, रूपयशोगान, स्पर्शोत्कंठा, सन्तोष, धैर्य, तिरस्कार, अपराध-बोध, मान-गुमान, समझौता, व्यंग्य, खीझ, दूरदृष्टि, निर्ममता के प्रति

आभार, स्वाथ का यथार्थ, भर्त्सना, युक्ति, सुझाव, नायिका का नाम चलाने की उमंग, दाह, चीत्कार, रोदन, वृत्ति-विरोध, नैराश्य, धनाढ्यता की भर्त्सना, प्रमत्तता, अलमस्ती, अल्हड़पन, मरणोत्तर-चिन्तन, मधुरातीतस्मृति, तर्कशीलता आदि के मनोज्ञ अवलम्बन से 'रस-वर्षा' के छन्द न अद्यावधि प्रस्तुत परकीया-शृंगार-काव्य के क्षेत्र में अपना सानी रखते हैं न कवित्तकारिता में। यदि पूछा जाय कि ऐसे कवित्त-सवैयाकार कौन हुए हैं, जिन्होंने खड़ी बोली के बीच में कहीं भी 'पै', 'नित'-सदृश ब्रजावधी-प्रयोग नहीं किये हैं तो आपको किसीका नाम बताने में कठिनाई पड़ेगी क्योंकि भाषा के इतने संयम का निर्वाह राजेश-सदृश एकाध कवित्तकार ही कर सके हैं। 'यह', 'ये', 'वह', 'वे' आदि के लिंग-प्रयोग भी इस कवि ने विवेकपूर्वक किये हैं। जो सवैये दो लघु वर्णों से आरम्भ होते हैं, यदि लघु-दीर्घ-वर्णयुग्म से उनका प्रथम चरण आरम्भ किया जायेगा तो पाठक इस दुबिधा में पड़ेगा कि दीर्घवर्ण को दबा कर पढ़े कि नहीं, अन्य चरणों में आरम्भिक लघु-गुरु को लघु-लघु करके प्रथम चरण के अनुसार पढ़ा जा सकेगा। ऐसी जाने क्या-क्या समझ-बूझ 'कवित्त-त्रिलोक' के रचनाकार ने धारण की है। शुद्ध हिन्दी, औसत हिन्दी और उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा में भी 'त्रिलोक' के छन्द विरचित हुए हैं।

आधुनिकयुगीन ब्रजभाषा-कवित्तकारों में राजेश जी को ही रीतिकालीन कवियों की समकक्षता में ठहराया जा सकता है और खड़ी बोली की तो अद्यावधि सर्वोत्कृष्ट कवित्त-सवैयात्मक कृति 'कवित्त-त्रिलोक' है ही, जिसके तीनों लोक सभी सुधीजनों को रसस्नात करते हुए अनन्ताह्लाद प्रदान करेंगे और परवर्ती कवित्तकार आदर्श मानकर इससे मार्ग-दर्शन भी प्राप्त करके उपकृत हो सकेंगे।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि राजेश जी की सक्षम लेखनी अभी और अनूठे और चमत्कारी ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत करे और वे शतायु होकर कवि-रूप में अभिनन्दित होते रहें।

सागर
नवरात्र, १९९२

डॉ० भगीरथ मिश्र
भूतपूर्व कुलपति, सागर विश्वविद्यालय
एवं
सम्प्रति उपाध्यक्ष,
म. प्र. तुलसी अकादमी

कवित्त-त्रिलोक

भू-लोक : कवित्त-वीथिका

।। विविध भाव ।।

यौवन के मद में जब चूर थे, वन्य लिया अवलोक फणी वर।
पूँछ से थाम दिये कई चक्कर, फेंका तो जा गिरा काँटों के ऊपर ।।
बेबस हो के महीनों वहीं तड़पा किया, प्राण तजे तब जा कर।
अर्जुन की शरशय्या के ऊपर सो के मरे तभी भीष्म रणीश्वर ।।

तुम सिक्ख भले, हम हिन्दू भले, हममें किसको किससे चिढ़ना ?
तुमसे हम हैं, हमसे तुम हो, किसको किससे लड़ना-भिड़ना ?
हम भारत भू पर एक सभी, किसका किससे रण है छिड़ना ?
अपने सब भेद विनष्ट करें अब यत्न वही कुछ है भिड़ना ।।

अपने परिश्रम से जीते चलते हैं हम,
इसमें दया क्या है दयानिधान! आपकी ?
देते हमें शिक्षा-दान, आँखें दिखलाते लाल,
एक दिन होगी भली पहचान आपकी ।।
काम नहीं आयेगा प्रचुर सम्पदा का कोष,
रहेगी धरी की धरी आन-बान आपकी।
हमको बिगाड़ने का करते प्रयास हो जी !
हम बिगड़े तो बिगड़ेगी शान आपकी ।।

'दुल्हनिया दिल वाले ले जायेंगे' झूमतेझामते गीत हैं गाते।
लक्खा धरा लिया है पहले, दिल वाले बने अब ब्याहने आते ।।
जो लड़की की हैं जूती के काबिल, जीवन-ज्योति उसीसे हैं पाते।
बाप को लूट के रीता किया, रँगरेलियाँ ले लड़की को मनाते ।।

आप सुन्दरी हैं बस जानिये नियुक्त हुईं
कोई और प्रश्न नहीं पूछने-पुछाने को।
नीयत-तबीयत हमारी और कोई नहीं,
आपको रखेंगे मात्र मन बहलाने को॥
नाम अवकाश का न लेंगे कर्मचारी नित्य,
लाभ यही होगा हमें लाभ के बढ़ाने को।
हम नहीं पूछेंगे कि क्या किया, नहीं क्या किया,
कीजियेगा कार्य कार्यालय को दिखाने को॥

सीधे सुजनों को कलि-कल्मष-निमग्न दुष्ट,
चाहे जो प्रपीडा दें विधान कहीं है नहीं।
भक्षक बने हैं जन-रक्षक पदों के लोग,
कोई सरकारी दृष्टि-दान कहीं है नहीं॥
सन्मुख दृगों के घोरतम अनाचार देख,
आँख मूंद लेते लोग, आन कहीं है नहीं॥
यों तो जन्म मैंने पूजा-पाठ में बिताया, पर
जान पड़ता है भगवान कहीं है नहीं॥

मरता हो मरे बिना पेंशन कोई, न भूल के भी सुध ले रहा है॥
हुए वर्षों रजिस्ट्री से पत्र गये, उसका भी न उत्तर दे रहा है॥
मुझ जैसे असंख्यक शिक्षकों की वह नैया इसी विधि खे रहा है॥
किसी कोयल ने रख अंडे दिये वही शिक्षा निदेशक से रहा है॥

सबसे न ऐंठा करो मेरी यह मानो बात,
जानो न कि जग में तुम्हारे नहीं सम है।
सातवें गगन पर चढ़ मत जाओ मित्र !
थोड़े से जनों में यदि रंग गया जम है॥
तुम्ही एक वीर बाँकुरे न हो उत्पन्न हुए,
बहुतों की भव्य भुजाओं में बड़ा दम है।
लम्पट लठैत सभी लोग दुनिया में आज,
कोई जरा जादा है तो कोई जरा कम है॥

॥ सबल धर्म ॥

ईश्वर की सभी सन्ततियाँ हैं, किसी का किसी से नहीं अलगाव है।
सन्तों को, सज्जनों को तो सदैव परस्पर प्रेम चलाने का चाव है॥

मानव मात्र से प्रेम करेगा, जिसे किसी धर्म से सच्चा लगाव है।
बुद्धियों में, हृदयों में, भ्रमों में है, धर्मों में कोई कहाँ टकराव है ?

शीतलता-शिक्षा-दान करता सदैव आया,
धर्म हमें कभी नहीं उष्णता सिखाता है।
उज्ज्वल हमारे हृदयों को है बनाता धर्म,
धर्म कहाँ पातक की कृष्णता सिखाता है ?
दुर्वासा न भृगु के समान है थमाता क्रोध,
धर्म हमें विष्णु जी की विष्णुता सिखाता है।
कोलाहल-कलह न धर्म-प्रतिपाद्य कहीं,
धर्म हमें केवल सहिष्णुता सिखाता है॥

भूखों रहे मर, आपस में फिर रार मचाने को क्या चले हो ?
अच्छा परस्पर मेल-मिलाप है, शत्रुता लाने को क्या चले हो ?
जो न दिमाग ठिकाने रहा, भला ठीक ठिकाने को क्या चले हो ?
पाप से धर्म बचाता तुम्हें, तुम धर्म बचाने को क्या चले हो ?

रहो मेलजोल से सभी तो धर्म बोल रहे,
डोल गया धर्म से जो क्षुद्रबुद्धि खल है।
वही वैमनस्य - फूट - शत्रुता - प्रसारक है,
जिनके चलन में न किसी की कुशल है॥
दुःखलोक से है यदि बचना अभीष्ट बन्धु !
धर्म मात्र तुमको शरण्य शुभस्थल है।
निर्बल नहीं है धर्म जिसको बचाओ तुम,
जो है धर्म वह अपने ही में सबल है॥

॥ कवि-जगत् ॥

'मानस' जिसे हैं आज कहने मनुष्य लगे,
देखो तो कहाँ से बह आयी रस-गंगा है।
नवल-नवल उक्ति-मीन, नव भाँति मञ्जु
भाव-तामरस-विलसायी रस-गंगा है॥
कोटि-काव्यकला-कान्त हिन्दी तीर्थराज हुई,
'मानस' के मिष द्रुत धायी रस-गंगा है।
सूर-वाणी यमुना, सरस्वती कबीर-वाणी,
तुलसी की वाणी ने बहायी रस-गंगा है॥

करते विभोर हमें आते हैं स्मरण जब
राम-भक्ति रुचिर निभाने वाले तुलसी।
हैं कहाँ न पूछो, नहीं किसके हृदय में हैं
मानव को मानव बनाने वाले तुलसी॥
कल भी थे, आज भी हैं, कल भी रहेंगे बने
रसा रसार्णव में डुबाने वाले तुलसी।
यावच्चन्द्रसूर्यज्योति चलते रहेंगे पूज्य
लेखनी-सी लेखनी चलाने वाले तुलसी॥

नाम कविता के चला आता तुलसी का नाम,
नाम तुलसी के आती कविता अतुल-सी।
जिसका हृदय चाहे अंगीकृत आज करे,
विश्व-लोक-शान्ति तुलसी में है विपुल-सी॥
भव के प्रसाद से अपार भव-सिन्धु पर
तुलसी की कविता विराज रही पुल-सी।
तुलसी की कविता है, कविता के तुलसी हैं,
तुलसी ही कविता है, कविता ही तुलसी॥

कोसलेन्द्र राघवेन्द्र चिदानन्द सद्घन से
तुलसी का तुलसी के दल-जैसा नाता है।
काव्य-गुण उसके मुदित अनुगामी बने,
जिनका अमित पुञ्ज कहा नहीं जाता है॥
नाना वाद आज बन रहे हैं विषाद मात्र,
अजी ! तुलसी की समता में कौन आता है ?
अगणित विश्वकविकोविदों का काव्य-सार
'मानस' के आगे नहीं मानस को भाता है॥

जिसका पुनीत ताप संसृति-त्रिताप हरे,
वह तुलसी ने ज्ञान-ज्योति जगा रक्खी है।
ऐहिकता-लीन अन्ध आज के जगत-बीच
ईश में अनास्था तुलसी ने भगा रक्खी है॥
तुलसी ने अमर बनाने को सुजन-भाव
शशि से अमृत-थाती मानो मँगा रक्खी है।
तुलसी ने विश्वकवितांगना के भाल पर
हिन्दी कविता की दिव्य बिन्दी लगा रक्खी है॥

चलोगे कि नहीं कवि-गोष्ठी सुनने के लिए ?
चलो चलें, घर बैठ बाग क्या लगायेंगे ?
आयेगा मजा जी ! कवि तरह-तरह के आ
मञ्च पर रौनक रसीली दिखलायेंगे ॥
गुदगुदा देंगे कोई हृदय हमारे, कोई
हँसा देंगे, रुला देंगे तो कोई छकायेंगे ।
पहले सुनाने में करेंगे नखरे पचास,
फिर साठ मील लम्बी कविता सुनायेंगे ॥

॥ ललकार ॥

सिर चढ़ आया तो कटेंगे लक्ष तेरे सिर,
तुझे लक्ष्य-सिद्धि तक जाने नहीं देंगे हम ।
ढीठ ये चपलताएँ, चौर्य की कुशलताएँ
छार कर देंगे, यहाँ छाने नहीं देंगे हम ॥
अमिताभ देश की अमृत-मयी हिम-भूमि
नीच ! तुझे अपनी बनाने नहीं देंगे हम ।
आँख फोड़ डालेंगे जो इधर उठायी आँख,
आँच निज देश पर आने नहीं देंगे हम ॥

भारत के अंग पर आँख है उठाता चाऊ !
झूठे स्वप्न होंगे ये हिमप्रदेश सेने के ।
भारत की फूट गयी, लूट फिरंगी की गयी,
अब हम कागज की नाव नहीं खेने के ॥
सैन्य है अधिक तो सुजनता-बधिक बने
चीनी चरणों में हम मस्तक न देने के ।
आज युद्ध-ज्वाला में अशुद्धबुद्धि चीनियों को
भून नहीं डालेंगे तो चैन नहीं लेने के ॥

चाव-भरे चाऊ ! हो चटकते इसीसे जो कि
रण में हमारा ललकारा नहीं देखा है ।
चाल चलते हो, रचते हो जाल, छल भरे,
चाल-जाल-छल का कुठारा नहीं देखा है ॥
विश्वप्रेम-भावना की माला अवलोक धाये,
ज्वालामुखी रोष का हमारा नहीं देखा है ॥
बोलियों की देखी है सिधाई ही हमारी अभी
गोलियों का गजबी फुहारा नहीं देखा है ॥

विश्वबन्धुता की प्रतिमा - से भारतीय जन
अर्चक-समर्थक अहिंसा-सत्यता के हैं।
अर्थ इसका नहीं कि निर्बल अनाथ क्रान्ति-
कारी अधिकारी चण्ड समर-कला के हैं॥
देश में हमारे नीच चरण न लाना, हम
धार्मिक हैं, दास नहीं धर्मभीरुता के हैं।
बाँके हैं लड़ाके वीर सकल यहाँ के अरे!
तेरे मन आ गये विचार ये कहाँ के हैं?

आगे बढ़ता है, धरता है पग भारत में,
अपना बताता न्यायसिद्ध अधिकार है।
सैन्य-मदोन्मत्त तू दिखाने अधिकार आया,
जानता नहीं है यहाँ वीरों का विहार है॥
हम कहते हैं बने शान्त रहें, शान्त रहें,
शीश पर तेरे किन्तु काल ही सवार है।
बहुत दिनों से बड़े रोष हैं पचाये हम,
आ जा तुझ पर आज रोष की उतार है॥

तेरे सम नीच बन सकते कदापि नहीं
स्वामी इस भारत के एक रज-कण के।
जिनके लिए तू बड़ी ऐंठ में भरा है चाऊ!
देख लेंगे कैसे हैं समूह सैन्य-गण के॥
ठान जिसे बैठे वह बात टलने की नहीं,
वचन के सच्चे हम पक्के सदा प्रण के।
भून-भून डाल देंगे चीनियों की बोटियों को
हिम में हिमालय के, प्रांगण में रण के॥

छेड़ दिया सोते हुए सिंहों को, विलोक, सभी
रहे हैं दहाड़, कच्चा चीनियों को खायेंगे।
चाऊ एन लाई! तूने शामत बुलायी मूर्ख!
धीर धर, तेरी यहीं कब्र बनवायेंगे॥
आगे हम बढ़े तो बहाने है बनाने लगा,
तेरे छल-छद्म में न भारतीय आयेंगे।
जाता है कहाँ रे! लौट, आँखों में हमारी आज
खून उतरा है, खून पी के चैन पायेंगे॥

दीर्घदेश-वासी लोल लोभ-लीन श्वान-सम
भारत की ओर बंक दृष्टि दुष्ट धरता।
नीयत डुलाता है कि मौत को बुलाता अरे !
चाऊ-एन-लाई ! क्या लड़कपना करता ?
हाथ जोड़, पैर पड़, क्षमा माँग, दूर भाग,
चीनियों के यदि तू अमंगल से डरता।
नदियाँ हिमालय से गिरी हैं इधर, आज
प्रलय-प्रपात है उधर को उतरता॥

हम थे छिपे तो तेरी आँखें आसमान लगीं,
आसमान का ही दृश्य हम दिखलायेंगे।
भारत की भूमि पर डाली अपवित्र दृष्टि,
फल भली भाँति तुझे इसका चखायेंगे॥
जो हिमप्रदेश तुझे शीतल लगे हैं, दल
तेरे उनमें ही भून-भून के गिरायेंगे।
भारत के भीतर से टूट पड़े तीतर-से,
बीन-बीन चीन के सिपाही चुन खायेंगे॥

इन हिम-खंडों में चपल चोर चीनी ! तुझे
घूँटे न घुँटेंगी ऐसी बूटियाँ दिखायेंगे।
शील का हमारे करता है तू दुरुपयोग,
काल-योग तेरा है, अकाल ही मिलायेंगे॥
बहुत दिनों से तुझे माना मित्र ! आज सब
कसर निकाल सर भून-भून ढायेंगे।
फूँकेंगे प्रबुद्ध युद्धज्वाला में विशाल चीन
होली इस साल बिना होली खेल जायेंगे॥

भारत में कदम जमाने चला शत्रु खल !
आज एकता में नहीं हम चूक डालेंगे।
ज्योति हम वीरों की, हमारे सामने तू कौन,
दीर्घ सैन्य तेरी कर टूक-टूक डालेंगे॥
एक-एक हाथ से हजारों का सफ़ाया कर
तेरे सम कुत्तों पर थूक-थूक डालेंगे।
सामने आ चाऊ ! आज उबल पड़े हैं हम,
फूँक रण-भेरी पूरा चीन फूँक डालेंगे॥

आये बन बीर बाँकुरे थे याहया खाँ ! अब
भारत के सामने न आगे पग बढ़ते।
भारत की मार सहने का नहीं ताब रहा,
पाकिस्तान ! तेरे हौसले हैं पस्त पड़ते ॥
शेर लड़ते हैं जने भारत जननि के जो,
तेरे सम गीदड़-सियार नहीं लड़ते।
अब तो समझ गये होगे याहया खाँ ! इसे
वीर लड़ते हैं, हथियार नहीं लड़ते ॥

काल-रूप आने को तयार रहते हैं सदा,
भाये जिसे हम भारतीयों को पुकार दे।
पाकिस्तान ! खाकिस्तान होना तुझे प्यारा लगा,
देखें कितनी है शक्ति सामने पसार दे ॥
युद्ध में जो उतरा विरुद्ध दिव्य भारत के
चीन-अमरीका को भी साथ ही उतार दे।
कोई देश आज दुनिया के बीच ऐसा नहीं
जिसके मिज़ाज़ नहीं भारत सुधार दे ॥

॥ चेतावनी ॥

कशमीर स्वर्ग ललचाये लोचनों से लख,
क्या इसे थमा के हम करेंगे तुझे निहाल ?
भोंड़ी तू बहुत ही है, जान ले निगोड़ी गोड़ी
किस्मत स्वदेश की ही छोड़ी जो न टेढ़ी चाल ॥
जो अशंक तू आतंकवाद को दिये है शह
ढहेगी हजारों को ले साथ, कहाँ है ख़याल ?
भुट्टो ! पाक ने बेपाक छोड़ा जो इरादा नहीं
भुट्टे की तरह भूनभान कर देंगे डाल ॥

गोला आग का है कशमीर बेनज़ीर ! जान
गले में अटक कर तेरे हर लेगा प्राण।
छोड़ न कुबुद्धि, मर, देश अपने को मार,
तेरे वही लक्षण जो सिद्ध करें म्रियमाण ॥
चेतावनी भारत की बार-बार सुन कर,
कानों में उड़ेल तेल सूझता न अकल्याण।
तू आतंकवाद में मदद से न आती बाज़,
रुष्ट हुआ भारत तो पाक वाक का न त्राण ॥

कशमीर तो है बेनज़ीर सही, पर तू बेनज़ीर ! न हाथ पसार।
नहीं तेरी दबोच में आने का है, मत सोच कि तू इसे लेगी डकार॥
शह आतंकवाद को दे रही है तो नतीजा है कौन अरी ! जा विचार।
हम क्रुद्ध हुआ नहीं चाहते हैं, पर तेरे है युद्ध का भूत सवार॥

भारत में शौर्य की निधान इन्दिरा हो गयी
पाक में प्रधान मन्त्री जुर्रत की है नज़ीर।
बेमिज़ाज़ उसे बमबाज़ी का बड़ा है नाज़,
टाफ़ी जानकर चूस लेने चली कशमीर॥
धैर्य से न जानो हित, ठानो युद्ध वी. पी. सिंह !
उसे पहचानो, बेवकूफ़ बड़ी है शरीर।
हो आतंकवाद के शिकार रहे बेकसूर,
चेतावनी देने से न मानने की बेनज़ीर॥

मान्य पहले था शिमले का समझौता, अब
वी. पी. सिंह ! तुझे बेनज़ीर बताती धता।
चली कशमीर को हड़पने है, परिणाम
भारत के हाथ पाक की है मौत, दे जता॥
तोष का न काम रहा, रोष कर, घोष रण,
तू आतंकवाद को क्यों धैर्य से है देखता ?
चेतावनी तेरी सुनने के लिए हैं बधिर,
बात से न मानने के लात के हैं देवता॥

॥ रूबिया-अपहरण ॥

अबला स्थिति में मिली पुत्री किसी की, लिया खल दृष्टि से क्यों उसे घेर ?
हर रूबिया ली तो क्या जीत लिया जग, आ लगी अन्धे के हाथ बटेर॥
ज़रा सोच के पैर बढ़ाना अरे ! अभी सोया नहीं कशमीर का शेर।
कहीं ऐसा न हो कि क़यामत आ के खड़ी हो, ख़ुदा की लगाये तू टेर॥

यह देवी है, दिव्य है कान्तकलेवरा, शील-सँकोच-समेटी है रूबिया।
समयागम खोलेगा भेद सभी, कितने न रहस्यों की पेटी है रूबिया॥
खलकर्मियों की, अपहर्त्ताओं की गयी मृत्यु से पूरी लपेटी है रूबिया।
कोई मुफ़्ती मोहम्मद की ही नहीं, यह भारतवर्ष की बेटी है रूबिया॥

रब से सही, रूबिया ख़ूबियों का बियाबान, हिफ़ाज़त पा तो गयी।
पड़ आतँकवादियों के छली चंगुल में, फिर लौट के आ तो गयी॥

हम भारतवासियों के हृदयों में हुलास जगाने को छा तो गयी।
रहेगी सदा चेत के देश की सेना, चलो अब अक्ल समा तो गयी ॥

मनमाना बड़ा करने लगे हो, तुममें बड़ी ताकत आ गयी है।
सब दीन-ईमान, शराफ़त छोड़ के बैठे, शरारत आ गयी है ॥
रही आती ही आती जो आ न सकी वह पास क़यामत आ गयी है।
बने रूबिया के अपहर्त्ता तो हो, नहीं जानते शामत आ गयी है ॥

बन रूबिया के अपहर्त्ता सही है कि साथियों को तुमने छुड़वाया।
पर जान लो दो में से एक का तो हर हालत में अब होगा सफ़ाया ॥
कहाँ दीन-ईमान तुम्हारा गया ? तुमने क्या उजड्डी का कांड दिखाया।
अभी हार लो, जीत लो क्रीकेट में, फिर फ़ैसला युद्ध में होने को आया ॥

बस वापसी रूबिया की हो इसीलिए आतँकवादियों को दिया छोड़।
इससे तुमको जो मिली शह तो वह तत्त्व का सिद्ध न होगा निचोड़ ॥
उलटी-पलटी यदि चाल चली तो जवाब मिलेगा तुम्हें मुँहतोड़।
हम हाथ कभी नहीं जोड़ने के, तुम्ही होगे खड़े हमें हाथ श्री जोड़ ॥

॥ दुहिता ॥

तेरी कहती थी माँ, स्मरण तुझे होगा पुत्रि !
"मैं जो न रहूँ तो इसको तो तुम डालो मार"।
अब बता तू ही तुझे मारता हूँ मैं कि नहीं,
बोल, मारता हूँ कि अतीव करता हूँ प्यार" ॥
"तुम मारते हो पिता !" "जा तू बोलती है झूठ,
बोलूँगा न तुझसे, कही जो बात निराधार"।
विहँस के बोली सुता, "मैंने तो बकाया तुम्हें,
मुझ पर पिता जो ! तुम्हारा प्यार है अपार " ॥

"सच तुम मुझे मारते थे पिता ?" "बेटी ! नहीं,
मैंने सपने में तुझे मारा नहीं एक बार।
बायें हाथ खाते एक बार कभी देखकर
हाथ पर हाथ दिया पटक, किया सुधार ॥
इस पर तू रो उठी, तेरे बोल बाबा उठे,
मारा करो मत, समझाओ ही सहित प्यार"।
इसी घटना से तव अम्ब कहने यों लगी,
"मैं जो न रहूँ तो इसको तो तुम डालो मार" ॥

"आ गया कचालू वाला, ले दो पिता! ले दो चलो"
रट अनिवार्य कार्य-विघ्न बन जाती है।
"जा रहा है, ले दो पिता! ले दो, ले दो" धुन बाँध
व्यथा को दिखाती सुता पिता को उठाती है॥
पिता उठे, ले दिया कचालू, खा के बोली सुता,
"क्यों कचालू ले दिया, पकौड़ी मुझे भाती है"।
'वही लेती", "तुम्ही ने तो ले दिया कचालू चालू,
पैसा फिर से दो", कह मन को चुराती है॥

'कैसी खट्टी-खट्टी पट्टी ले दी मुझे आज पिता!
खाओ तुम्ही", कह सुता पट्टी को बढ़ाती है।
'लाओ, मत खाओ", कह लेने चले पिता, देख
हाथ खींच करके मधुर मुसकाती है॥
दो क्षणों में बोल उठी, "अरे! है बहुत यह,
तुम्ही अब खाओ, खायी मुझसे न जाती है"।
बढ़ते पिता हैं तो विहँसती है चारु, चार
वर्ष की सुता अपार चरित दिखाती है॥

गोरी-गोरी कोमल, मधुर रूप-कान्ति-भरी
शोभा कही जाती नहीं मुख अभिराम की।
और क्षमता न सही, मूर्ति समता की बनी,
समता कहाँ है वाणी तोतली ललाम की॥
कुछ कह खिलखिला पड़ती है लोटी जाती,
कुछ सुन रूठती, न वाणी रख नाम की।
चालढाल पुत्री की निहाल रहती है किये,
छाया छू न पाती है दुखद विश्व वाम की॥

"पिता जी! सलाई मुझे ला दो बीनने के लिए,
लाल-लाल स्वेटर मैं बीन के दिखाऊँगी।
मुझे लाल स्वेटर सुहाता है बहुत, और
और किसी स्वेटर में हाथ न लगाऊँगी"॥
"बड़ी हो के बीनना, अभी तो चार वर्ष की हो"
"हाँ! हाँ! तब बीन-बीन तुम्हें पहनाऊँगी।
किन्तु अभी ला दोगे सलाई बीन लूँगी एक,
बीनूँ न तो कहना, मैं बीन के बताऊँगी"॥

महँगी किसी जो वस्तु पर है मचल जाती
चारु बालहठ का प्रसार डाल देती है।
"यह महँगा है, कुछ ले लो और" सुनकर
चप्पल को पथ में उतार डाल देती है॥
चप्पल उठा ली गयी, गोद से खिसक तब
रक्षा-योजना का गुरु भार डाल देती है।
थोड़े धन, बड़े मन वाले पिता जी के लिए
क्या करें न क्या करें विचार डाल देती है॥

इकलौती गुण-भरी लाड़ली लड़ैती बड़ी,
कैसे किन्तु बात दुहिता की मान सब लें।
साधन हैं सीमित, समझ नहीं आता कुछ,
मार्ग-हठ में उतार फेंकती है चप्पलें॥
कहते स्वगत पिता, कितना छकाती मुझे,
कितनी कला-कलित बाललीला की कलें।
अच्छा बना हाट में मनोहर हमारा दृश्य,
पुत्री चले गोद में, करों में चलें चप्पलें॥

"गुड्डा वह ले दो पिता!" "है जी! कितने का वह ?"
खड़े हुए कान "रुपये औ आठ आने" से।
"महँगा बड़ा है, कुछ और वस्तु ले लो", सुन
बिलख-बिलख नहीं मानी समझाने से॥
"रो ले फिर चल", सुन और सुता फूट पड़ी,
"अरे ! ताश ले ले", सुन आ गयी ठिकाने से।
"पैसे और होंगे जब, लूँगी वही गुड्डा तब"
"क्यों न तुझे ले दूँगा अधिक धन लाने से ?"

एक डेढ़ रुपये के पीछे रुला डाली सुता,
येन केन प्रकारेण इच्छा का किया दमन।
और वस्तु ले दी लाख, वह तो न ले दी एक,
करुण जिसी के लिए सुता ने किया रुदन॥
नासमझ को है समझाना कौन बड़ी बात,
सोच-सोच कर होता ग्लानि का है संचयन।
तब नहीं मानती मनाये से सुपुत्री रही,
अब मोल लाये बिना माने न पिता का मन॥

"कल फिर होगी रामलीला ?" हाँ! अवश्य सुता!
एक दो दिवस हो के रह नहीं जाती है"।
"कल फिर सूपनखा आयेगी यहीं को, हम
देखेंगे कि लक्ष्मण से नाक कटवाती है ?"
"नहीं, नहीं बेटी ! वही की वही न होती सदा,
लीला नित्य-नित्य और आगे बढ़ जाती है।
कल हम देखेंगे कि नाक कटी तो क्या हुआ"
"तब तो भला है लीला नयी-नयी आती है" ॥

"लक्ष्मण ये बड़े अच्छे लगे, रहते कहाँ हैं, इनके घर जाऊँ"।
"क्या पता ये रहते कहाँ हैं", "पिता ! पूछ लो", "लीला में कैसे बोलाऊँ ?"
"हो चुके लीला तो पूछना", "सोचता हूँ तुझे रावण-दाह दिखाऊँ।
ये उससे पहले चले जायेंगे, पूछूँगा कैसे ?" "तो मैं क्या बताऊँ ?"

॥ प्रेम-प्रभा ॥

यों तो मुझे जग था तम-पूर्ण, उजाला दिखा दिया आपने आ कर।
हूँ कहने में समर्थ नहीं कितनी करुणा की मुझे अपना कर ॥
मैं बड़े नीचे कहीं पड़ा था अहो ! आपने ऊँचे विलोका उठा कर ।
लीलया मेरा महत्व बढ़ा दिया दृष्टि में जाने कहाँ से चढ़ा कर ॥

मिलते समाज में विराजते हो भाँति-भाँति,
बीच सुजनों के भले मनुज कहाते हो।
क्या कहें 'दयालु' जभी पड़ते अकेले कहीं,
तभी मनमाना काम कर दिखलाते हो ॥
मेरे उर में ही दिनरात करते हो वास
और उसमें ही आग चाव से लगाते हो।
रोम-रोम में जो छवि-सागर भरे हो अरे
प्यारे ! इसी कारण न जल-भुन जाते हो ॥

मेरे लोक के आलोक दर्शन से शोक हर
मुझे अवलोकते प्रवासी एक तुम हो।
जीवन समुज्ज्वल बनेगा तुम्हीं से 'दयालु'
मेरे उर-मन्दिर-प्रकाशी एक तुम हो ॥

देखना तुम्हें मैं क्या बना करके देखता हूँ,
क्या आनन्द मेरा क्या उदासी, एक तुम हो।
मैं कहीं जगत में तुम्हारे हेतु हूँ ही नहीं,
मेरे हेतु जगत के वासी एक तुम हो॥

लाख-लाख क्रोध कर लाख-लाख गालियों से
मन को प्रसन्न कर जाना तुम्हें आता है।
आते तो उजाड़ने का करने प्रयास, किन्तु
हृदयोपवन को सजाना तुम्हें आता है॥
चाहो नहीं, देखो नहीं, जानो नहीं, मानो नहीं,
मेरे प्रेम-सिन्धु में नहाना तुम्हें आता है।
आता है 'दयालु' मुझे देखना तुम्हारी आँख,
जब देखो आँख ही दिखाना तुम्हें आता है॥

प्रेमियों को कोई जान सका नहीं, विस्मय क्या नहीं आपने जाना?
रोदन-गायन तो सुनते रहे, आया विचार में रोना न गाना॥
प्रेम-प्रमत्त मैं आपकी दृष्टि में पागल पूरा गया पहचाना।
मैंने तो प्राण निकाल धरे, सदा आपको सूझा मजाक उड़ाना॥

जिसके लिए न्यारा हुआ जग से उसने ही मुझे जब न्यारा किया।
ठुकराता रहा वह, ठोकरें खाते हुए मैं उसी को विचारा किया॥
दिन में बना दूर ही दूर रहा, रजनी में दृगों का सहारा किया।
घर वालों से मेल लिया कर यों वह सोता रहा मैं निहारा किया॥

॥ दाम्पत्य-दीप्ति ॥

चलती रही रूप अमोल लिये कहीं लोचन-लोलता लाये बिना।
पिता द्वारा सुनिश्चित ब्याह की स्वीकृति दी कोई शब्द सुनाये बिना॥
पति को जयमाल तो दी पहना, पर ऊपर दृष्टि उठाये बिना।
किसीके चरणों पर तो आ गिरी, पर गोरी स्वमान गिराये बिना॥

क्या मैं कहूँ पतिदेव की बात, विचित्र अविष्कृतियाँ करता है।
कार्य के आलय जाते हुए रुक दो क्षण झूम लिया करता है॥
आधी किये रस-केलि सिधार निशा तक मार दिया करता है।
रंग से कोई प्रयोजन है नहीं, अंग से खेल किया करता है॥

"मान ले मैं पड़ा सो रहा हूँ, तुझको ही लगी है मनोज की चाट।
तू शतशः करती है प्रयास, विषण्ण विलोकती रंग की बाट॥

मेरे नहीं पुलकावलि हो सकी, खीझ के तेरे हुआ है उचाट"।
"हो बड़े वो तुम", "वो कहाँ सुन्दरि ! सीधे से अच्छा करूँ रति-ठाट" ॥

मुझसे तुम्हें कौन प्रयोजन है, जिन्हें चाहते हो उन्हें राजी करो।
अपनी परियों को लगा उर से कभी 'हाँ! जी!' करो कभी 'ना जी!' करो ॥
खुदा ईश्वर से भी नहीं डर कोई, गली-गली इश्कमजाजी करो।
हमें खाने को रोटियाँ ला कर दो, फिर इश्क करो चहे बाजी करो ॥

था बिधना का विधान, विवाह हुआ तुझसे, चलो दूखा नहीं हूँ।
अंग से तेरे नहीं हरिआया, बिना उसके अब सूखा नहीं हूँ ॥
तू किस खेत की मूली भला, पद-सेवी मैं देव-वधू का नहीं हूँ।
तू क्या एकान्त बराती बराबर, मैं तेरी देह का भूखा नहीं हूँ ॥

अब शेखी बघारने क्या चले हो, सदा गंध अनंग की सूँघते थे।
मम मृतिका-निर्मित चूम कलेवर सातवाँ अम्बर चूमते थे॥
सुरराज की आँख से आँख लड़ाये बिना निशि में कब ऊँघते थे?
दिन भूल गये जब मेरे लिए अजी! बावले-बावले घूमते थे?

सातवें गगन से उतरता ही पारा नहीं,
जाने किस आन पर तुम यों अड़ी हो जी!।
रूठती हो मुझसे, न लज्जा लेश मात्र आती,
जाने तुम हृदय की कितनी कड़ी हो जी! ॥
बड़ा कौन, छोटा कौन, बात बड़ी छोटी यह,
छोटा चलो मैं ही, तुम मुझसे बड़ी हो जी!।
देखो मम अंग-अंग कोई झकझोर रहा,
आओ इस ओर, किस फेर में पड़ी हो जी! ॥

क्या मिल जाता तुम्हें है अजी! मम अंग में चित्त डुबा रखते हो?
सूने में पाओ मुझे किसी काल तो काल-अकाल हवा रखते हो॥
जो मैं कहीं 'न न ना ना' करूँ बड़े दीन हो शीश नवा रखते हो।
देखो जभी मियाँ बावले आ रहे, जान को मेरी उबा रखते हो॥

"तुम कहती हो यही, "रति की न अति भली,
कहाँ तक प्रणय-प्रसार किया जायेगा?"
हम कहते हैं, जहाँ तक अपने से बने,
वहाँ तक मदनोपकार किया जायेगा॥

अच्छा ! चलो छोड़ो इसे, जो कहो वही है सही,
नीरस-विवाद-परिहार किया जायेगा।
आज तो हमारे भुजा-पाश में विराजो प्रिये !
संयम का कल से विचार किया जायेगा" ॥

॥ श्रृंगार-श्रृंग ॥

अंग चला रही हो मतवाले तो बाले ! खरे रस-रंग चलाना।
हो वृषभानु-कुमारिका तो जब अस्त हो भानु तभी स्मृति लाना ॥
गोरा है गात, गुमान तो होगा, कहीं मुझ श्याम को भूल न जाना।
जीवन में तुम आ ही गयी हो, अजी ! वन में मिलने चली आना ॥

चार बनाने को पैसे चली, पर प्यार किसी का जुटा कर आयी।
क्या पता क्या किया क्या न किया, गुजरी मुखड़ा कलुटा कर आयी ॥
पद्मविलोचन केशव से कठिनाई से पिंड छुटा कर आयी।
गोरस बेचने थी निकली, पर गो-रस गोरी लुटा कर आयी ॥

तेरे लोल लोचन, कपोल अनमोल देख
मानस में और रूप आना नहीं कोई है।
शुभ्र सुकुमारता में यौवन की ज्योति मिली,
संग मुझे और अपनाना नहीं कोई है ॥
जाना यह मैंने रसा कैसी रसवन्ती अहा !
तू है रस, और रस पाना नहीं कोई है।
इतनी मधुर है कि पीते बनती है नहीं,
गोरी इतनो है कि ठिकाना नहीं कोई है ॥

किसके विलोचनारविन्द न विकस उठे
वदनांशुमाली अवलोक तव तेजोमय ?
किसके न मानस में मणि-सी बिखर गयी
तेरी अलकावलि विलोक लोल लीलालय ?
किस दुखाक्रान्त को न क्षण भर में ही मिली
मंजु मोद-निधि तेरी सन्निधि से शोभाश्रय ! ।
तेरी विहसन-माधुरी की लूट ऐसी मची
दौड़ पड़ीं दृष्टियाँ, उछलने लगे हृदय ॥

शोभन यौवन, रूप मनोहर, देह लिये उजली-उजली हो।
शुभ्रे ! सभी रँग पास तुम्हारे, मुझे किसमें रँगने को चली हो ?

वर्षा में रंगबिरंगे सजे पट इन्द्र के शायक-सी निकली हो।
दृष्टि का वाण चढ़ा लो लली ! किसी को यदि मारने को मचली हो ॥

रोम-रोम-व्याप्त तुझे स्वप्न में न प्राप्त कर
जन अनुरागी शिर कूट-कूट जाते हैं।
देख-देख श्रीवदन होते हैं प्रफुल्लचित्त,
बिछुड़-बिछुड़ रोते फूट-फूट जाते हैं॥
अंग-अंग-ओप-कन्दराओं से निकल कर
तेरे रूप-डाकू हमें लूट-लूट जाते हैं।
इनको सँभाल या सँभाल हरिणाक्षि ! हमें,
तेरे शर छोड़े बिना छूट-छूट जाते हैं॥

गोरी-गोरी मंजु-मंजु मधुर-मधुर मूर्ति,
पल भर प्यारी टलती है नहीं मन से।
कलित कलेवर विलोक भर ले कि कांति-
राशि है निसृत होती दर्शक-नयन से॥
होता है धवल हर्ष हृष्टपुष्ट हँसमुख
हरिणदृगी के मनहरण हसन से।
गोल मुख, अमृत कपोल, अनमोल बोल,
डोल-डोल जाता मन ऐसे रस-घन से॥

ऐसी वरानना के मिलने पर कैसे न चित्त छला कर देखता।
क्यों विरहानल में तपता ? मदनाग्नि में अंग जला कर देखता॥
जो न किसी के गलाये गली वह दाल दिनेक गला कर देखता।
जो परलोक की होती न भीति तो प्रीति तुम्हारी चला कर देखता॥

पल भर जिन्हें पुण्य दर्शन का योग मिले,
होते हैं प्रफुल्ल परिपुष्ट प्रिय तन से।
वर्षती विभा-सी है विशद रूप-विलसित
यौवनोल्लसित नय-अयन नयन से॥
मोद-राशि होती और अधिक मधुर मंजु
वनजातनेत्री वनिता के विहसन से।
दीप्त दामिनी-सी है शरद-यामिनी-सी स्वच्छ,
अहि-भामिनी-सी मिली हृद्गत मदन से॥

तेरी कलेवर-कांति विलोक के चित्त चला, विचला करता है।
है बड़ा उज्ज्वल प्रेम पदार्थ, किसीको नहीं गँदला करता है॥
सामने आयी तो सामने आ जा, इसी विधि लोक चला करता है।
लोग यही कहते हैं कि ईश्वर जो करता है भला करता है॥

रस की भरी बातें अघा के सुनीं, हमसे तो टली मुँह प्यारी बनाकर।
किसके लिए मादक यौवन है? किसके लिए डोलती अंग बना कर?
किसकी भृकुटी अवलोका करेगी कभी अपना मनचाहा बना कर?
किसके भले कर्म सँवारने को बिधना ने रचा यह रूप बना कर?

लक्ष्मी ही रूठी रही मुझसे, फिर क्यों दुनिया रहती नहीं छूटी।
मेरे थी जो कुछ थोड़ी-सी सम्पदा, यारों ने आकर यत्नों से लूटी॥
जीता कहाँ अब हूँ मरा घूमता, किस्मत है बड़ी कालीकलूटी।
चाहे तो तू मुझे दे जिला, दे जिला, तेरे है पास सँजीवन बूटी॥

जिन लोचनों ने तुझे देख लिया उन्हें और की ओर निहारना क्या?
तुझी को जिस चित्त ने चाह रखा उसे और कहीं झख मारना क्या?
रस-लालसा जो है घनेरी तो तेरी रुठाई से हिम्मत हारना क्या?
अजी! लक्षित रूप अनूप है तो फिर.पातक-पुण्य विचारना क्या?

दिखता बड़ा भोला जो था मुखड़ा, नहीं जानते थे वही घातक होगा।
पता था कहाँ मेरे लिए क्षण को न खुला तेरे चित्त का फाटक होगा?
मतवाला हूँ मैं, 'मत' वाली है तू, भला ऐसा कहाँ तक नाटक होगा?
मुझसे अब साथ में तेरे सलोनी! न पातक होगा तो पातक होगा॥

मैं तो तुम्हारे लिए मरा जा रहा, जी रही हो तुम जी में किसे लिये।
प्यार तुम्हें करना नहीं आता तो आओ न, आयेगा प्यार किये-किये॥
लोक न धर्म-विचार करो, यही धर्म है लोक-प्रवर्तन के लिए।
मेरे समीप तुम्हें द्रुत दौड़ के आना ही चाहिए, चाहिए, चाहिए॥

कितने जलजात मिले तुझे और तेरे जलजातों में क्या धरा है।
इसे तू नहीं जानती, जानता मैं कि तेरे शराघातों में क्या धरा है॥
तव दर्शनों से है पता चलता विधि की करामातों में क्या धरा है।
कुल, कानि न धर्म की बात चला, इन खोखली बातों में क्या धरा है?

बात करनी है कर, बात बना, बात बिना
मुझे बात आगे को ढकेलना न आता है।
जब खेलता हूँ खेलता हूँ सदा पक्का खेल,
कच्चा खेल मुझे कभी खेलना न आता है।।
किसी भागती हुई छबीली मृगलोचनी के
पीछे-पीछे अपने को ठेलना न आता है।
खड़े-खड़े प्यार करना है तो किये जा लली!
नखड़े हजार मुझे झेलना न आता है।।

विचित्र है प्रेम के ताप प्रचंड से तेरा नहीं यदि जी पिघला।
अरी! बिधा तीर क्या तेरे नहीं, जिससे पथ सूझा मुझे उजला।।
निरा गिरा तो मैं मनुष्य नहीं, मुझे जान न गोबर का उपला।
खड़े-खड़े प्यार किये जा लली! नखड़े न हजार मुझे दिखला।।

रूप की कैसी उजागरी है वह क्या मैं कहूँ, कही जाती नहीं है।
प्रेम हुआ तो नहीं टलने का, वृथा बुधों की कही जाती नहीं है।।
बात हाँ! प्रेम की स्वीकृति की उसके मुख से कही जाती नहीं है।
जायेगा देखा इसे भी किसी दिन, सामने है कहीं जाती नहीं है।।

प्रमदे! तुम्हारे भव्य यौवन को देख-देख
रह भी हैं जाते नेत्र औ न रह जाते हैं।
पंकजविलोचनि! तुम्हारे प्रेम-चौसर में
मेरे हाथ डालने को पौ न रह जाते हैं।।
क्या कहें विलोक तुम्हें उर में हमारे उठ
मंजु मनोरथ कौन-कौन रह जाते हैं।
वार्त्ता मित्र-मण्डली में करते तुम्हारी नित्य,
पड़ती समक्ष हो तो मौन रह जाते हैं।।

जाना वरानना ही तुझको, कभी जानूँ वरोरु न वासर आया।
रूप-पयोनिधि में मैं जभी-जभी आया नहा कर 'हा' कर आया।।
छोड़ीं विषान्वित ही किरणें, न सुधाकर हो के सुधाकर आया।
मैं पद-पद्म में कैसे पड़ूँ, ठुकराने की ही जो कृपा कर आया।।

अपना तुम्हें मूल्य पता नहीं, पाग में यौवन के पगने लगी हो।
किस भाँति कहूँ मुझे रंग के रंग में रंग-भरी रँगने लगी हो।।

ठगा जाऊँगा मैं भला कैसे नहीं जब आ के तुम्ही ठगने लगी हो।
अब आओ समीप न देर करो, जने कैसी मुझे लगने लगी हो॥

रूठने का अधिकार तुम्हें प्रिये! मेरा प्रयोजन है कि मनाऊँ।
मेरे समीप विराजो तो दो क्षण, मानो नहीं जो बुरा समझाऊँ॥
मेरे बिना कुछ तेरा नहीं बिगड़ेगा, तुझे तज मैं कहाँ जाऊँ।
जीवन मेरा तुझी से है भामिनि! आ, आ न, आ जा गले से लगाऊँ॥

जान नहीं पाते क्या ख़याल हैं तुम्हारे मन,
इश्क़ का ख़याल जब हम फ़रमाते हैं।
गज भर अपना कलेजा काढ़ देते, पर
रत्ती भर तेरा दिल देख नहीं पाते हैं॥
तरस-तरस रह जाते नूर देख-देख,
बिछुड़े तो तड़प-तड़प रह जाते हैं।
दिन इसी तरह गुजरते हैं जाते, कुछ
तुम शरमातीं, कुछ हम शरमाते हैं॥

संग मोद-वैभव का अनुभव होता हमें,
अन्यथा व्यथा असहनीय सह जाते हैं।
हृदय से शब्द ला न पाते हैं वदन तक,
लोचनों से सकल अकथ कह जाते हैं॥
प्रति पल अनुराग-रञ्जित मनोरथों के
सद्म कोटि-कोटि बन-बन ढह जाते हैं।
शशिमुखि! तेरे तीक्ष्ण नयन-शरों से हम
बिध-बिध जाने किस बिध रह जाते हैं॥

बोलती नहीं हो, बार-बार पूछते हैं हम
क्या विचारती हो रस-रंग के चलन में।
स्नेह-शब्द एक भी सुलभ हमें होता नहीं,
ऐसे लगे लाल कौन तेरे हैं वचन में?
बहुत दिनों से धैर्य धारे हम बैठे प्रिये!
टकटकी बाँधे हुए सुन्दर वदन में।
करने लगेंगे वही क्रीड़ा आज प्यारी अब
जो भी कुछ आयी इस पीड़ा भरे मन में॥

देवता-शिरोमणि मदन देवता है सही,
भावन उसीका मन्त्र-जाप कर लेने दो।
भला-बुरा वही तो हमारे काम आता नित्य,
जो हो, करना है पुण्य-पाप, कर लेने दो ॥
अंश कितने है योषिता में दीप्त ताप-रस,
अवसर आया आज माप कर लेने दो।
कुछ मत सोचो, आँख मूँद लो क्षणेक प्रिये !
जो कुछ करूँ मैं चुपचाप कर लेने दो ॥

जो करता हूँ मुझे कर लेने दे, देने दे रूप को मान अमोल।
भामिनि ! मैं अरि तेरा नहीं हूँ, 'अरे ! अरे !' तू मुझसे मत बोल ॥
तेरे बिना मुझे इष्ट नहीं कुछ, प्रेम है कोई झमेला न झोल।
तू अनमोल, गया मन डोल अरी ! कर लोल कुरंग-किलोल ॥

मेरा भाग्य मानो अब जा के है उदित हुआ,
सामने दृगों के रूप-जैसा रूप लाया अब।
अच्छी कटी जाती थी, व्यतीत व्यर्थ आयु हुई,
क्या है रस का स्वरूप मैंने जान पाया अब ॥
रतिपति देव का चुकाने को बकाया ऋण
मेरे लिए माया-मोह तेरी बनी काया अब।
जीवन के सारे रंग मैंने खेल डाले लली !
कहाँ था सलोना रूप तेरा जो कि आया अब ?

सच है कि तुम रूपराशि, हम कुछ नहीं,
ठीक है कि हम नहीं लायक तुम्हारे हैं।
भाल को सुधारो लिपि चाहो तो सँभाल करो,
आहत अतीव किये शायक तुम्हारे हैं ॥
सुखदायिनी हो तो हमारी दुनिया में तुम्ही,
हाय ! हाय ! हम दुखदायक तुम्हारे हैं।
रीझी न हँसाती सही, रूठी ही रुलाती सही,
तुम नायिका हो, हम नायक तुम्हारे हैं ॥

चलते विदेश मेरी मानकर तेरा कर-
अरविन्द मेरे धन्य उर पर आया था।
इस बार अतिशय तेरा न वियोग खला,
रो-सा गया निज को जो तुझसे छुटाया था ॥

हूँ कृतज्ञ प्रियतमे ! मेरे दुःख-सुख में जो
तूने मृदु दुःख-सुख अपना मिलाया था।
कैसे बँधा रहता न दृढ़ता के साथ, जब
धीरज कमल ने कमल को बँधाया था॥

भेद या अभेद से या चाहे जिस भाँति चला,
साथ रहा ऐसा जो न छूटने को आया है।
एक लगा छूटने तो अन्य ने पकड़ लिया,
कभी न हमारा युग्म टूटने को आया है॥
यौवन-कलश वर्ष षोडश सुरक्ष रखा,
मोदप्रद अब वही फूटने को आया है।
बचोगी कहाँ जो होनहारिता का भेजा हुआ
प्रेमी ही तुम्हारा रस लूटने को आया है॥

तेरे शिव मेरे शिवाराति कर लेंगे सन्धि,
एक वासरावसर दे अवश्य वसुदे !।
मुख-सुख-सार तो प्रियंवदे ! प्रसार दिया,
सुख-मुख-दर्शन करा दे सौख्य-सुखदे !॥
आननारविन्दस्थित रूप-सर-क्रीड़ा-लीन
दृग-मीन इधर चला दे हे हितप्रदे !।
पद-नख-मणि-कान्त मेरा प्रणयप्रदेश
करना तुझे है, कर या न कर प्रमदे !॥

मत कहो, मत कहो अस्वीकृति स्पष्टतया,
आहत कहीं हो प्रेमी-मुख न लटक जाय।
सब कहो, सब कहो, कौन जाने लाभ करे,
हृदय-पटल-मल पटक-पटक जाय॥
पास रहो, पास रहो, हृदय तुम्हारा हुआ,
कामातुर इधर-उधर न भटक जाय।
दूर रहो, दूर रहो, तुममें हमारा अभी
मन अटका है, कुछ और न अटक जाय॥

मोजा पहने बिना न घर से सिधारो कहीं,
बारो मास ऐसी आन-बान में ज़हर है।
डर कर थोड़ा ही सँवारती हो अंग जान
यौवन की सहज उठान में ज़हर है॥

स्निग्ध मृदु मंजुल तुम्हारा तन प्राणधन,
रूप की अकृत्रिम कटान में ज़हर है।
देखो परिणाम क्या हो, पीता हूँ हजार बार,
मधु-भरी तेरी मुसकान में ज़हर है।।

मिष्ट यदि ध्यान तेरे हित के विकास का है,
इष्ट रति, वाञ्छित विषय भी अपार है।
तेरा कष्ट देख फट जाता है कलेजा और
कष्ट तुझे दूँगा सुनिश्चय भी अपार है।।
जीवन में तूने सुधा-धारा है बहायी, किन्तु
मन में विलोका विषाशय भी अपार है।
हम स्वयमेव नहीं स्पष्ट अपने को हुए,
प्रेम भी अपार है, प्रणय भी अपार है।।

झूठ बात कहनी कदापि मुझे आती नहीं,
मेरी बात पर ध्यान ललो ! ला सके तो ला।
जीवन के योजन में रस का प्रयोजन है,
रस-घट से दो-चार बूँद ना सके तो ना।।
मेरे साथ पंक्तिबद्ध हो के समवेतस्वर
रंगिनी अनंग-राग गोरी गा सके तो गा।
स्वार्थहीन प्रेम कहीं किसीका किसीसे नहीं,
आकुल मुझे विचार आ कुल सके तो आ।।

कितने दिन लोचनों-लोचनों से तव रागाभिषेक किया करते ?
लगा प्रेम का रोग भयानक था, फिर कैसे न कोई दवा करते ?
तुम्हें छोड़ के जाते तो जाते कहाँ, किसे देख के चैन लहा करते ?
रहे हाल बेहाल तुम्हारे बिना, तुम्हें कष्ट न देते तो क्या करते ?

मदन की मार कुछ ऐसी है विचित्र जो कि
दौड़ते तुम्हारे पास आना पड़ जाता है।
रूप-आपगा की अवलोक के धवल धारा
चारा नहीं चलता, नहाना पड़ जाता है।।
जाने किस धातु की बनी हो मृगनेत्रि ! तुम
बड़े यत्न से जो पिघलाना पड़ जाता है।
मानी तुम ऐसी हो कि मानी मिलती ही नहीं,
हर बार तुमको मनाना पड़ जाता है।।

धर श्रीचरण मेरे हृदयोपवन-मध्य
प्रेम-विटपावलि-विकास हुई तुम हो;
शान्ति-सिक्त शून्य-शून्य संसृति में सम्प्रति आ
मादक मधुर मन्द हास हुई तुम हो ।।
नाचती अहर्निश नयन-रंगभूमि पर
लास हुई तुम हो, विलास हुई तुम हो।
कहाँ रह गया दूर-दूर रहने का प्रश्न,
जीवन की जब हर श्वास हुई तुम हो ?

।। इन्दिरा-आभा ।।

'मन्दिर आवति इन्दिरा, दै न किँवार गँवारि !' कहा मतिराम ने।
भारत माँ ने सुना-समझा, फिर देख लो इन्दिरा आ गयी सामने ।।
क्या-क्या नहीं किया भारत का हित इन्दिरा के मतिगर्भित काम ने ?
शाश्वत इन्दिरा इन्दिरा के करों से लही गर्वित भारत धाम ने ।।

जैसी भी थी भली थी, प्रियदेश-हितैषिणी तो मतवाली थी इन्दिरा।
एक ही दृष्टि से भारतवासियों को अवलोकने वाली थी इन्दिरा ।।
विश्व-प्रतिष्ठित शान्ति की दूतिका शौर्यनिधान निराली थी इन्दिरा।
पानी से खेलती है दुनिया, वह आग से खेलने वाली थी इन्दिरा ।।

लक्ष योजनाओं से समृद्ध देश-भूमि कर
हस्ती इन्दिरा की थी जो इन्दिरा बिछा गयी।
वैज्ञानिक अंधड़ में उँगली पकड़ कर
शान्ति-पथारूढ़ होना विश्व को सिखा गयी ।।
जितने दिनों भी रही वरदान हो के रही,
बलिदान होने की भी रीति दिखला गयी।
खा जो गयी गोलियाँ, सुला जो गयी दीप्त तन,
भारतीय हृदयों में होलियाँ जला गयी ।।

।। भक्ति-भाव ।।

तुम्हें छोड़ करके अलग मैं जभी से हुआ,
याद लौट जाने की हजारों करता रहा।
आ गया कहाँ ? विचार शोच पड़ता अपार,
बोध चलने का अविकारी करता रहा ।।

कान्त-स्वाद्य वस्तुएँ समक्ष जब-जब हुईं,
तब-तब स्मृति मैं तुम्हारी करता रहा।
तव रूप-गुण और गुण-रूप ध्यान कर
'हा मुकुन्द! हा! हा! बनवारी!' करता रहा ॥

केशव की करूँ भक्ति अनन्य, मैं बाल्य से हूँ इसीका व्रतधारी।
साँवले का मुख देखे बिना मरूँगा यह बात है मेरी विचारी ॥
लौकिक जीव क्या दिव्य विभूतियों की कृपा के न हुए अधिकारी ?
शान्तनु को मिल गंगा गयी थी, मुझे नहीं मेरे मिले गिरिधारी ॥

चाहता हूँ सही रघुपुंगव का प्रेमी बनूँ,
घोर व्यवधान-विघ्न टालना बहुत है।
राम-भक्ति-साँचे में अभी तो मुझ जैसे दीन-
हीन-हेतु जीवन को ढालना बहुत है॥
भवतापतप्त स्वजनों को हे समीरसूनु !
आता तुझे कष्ट से निकालना बहुत है।
मेरे उरस्थल-खलपञ्चक-विनाशन को
तेरे लिए दृष्टि भर डालना बहुत है॥

मेरे उरस्थल में खल-पञ्चक रंग जमाये है साधना-घालक।
क्या है असाध्य, सँहार इसे दे कपीश्वर चारु चरित्र के चालक ! ॥
तेरे बिना कहीं कोई त्रिलोक में भक्तजनों का नहीं प्रतिपालक।
जीवन-व्योम में राघव-प्रेम-समीर बहा दे समीर के बालक ! ॥

यह जानता हूँ कि महत्तम हो, मैं तुम्हारे समक्ष हूँ नन्हा तृणांकुर।
मत भूलो कि भद्र जवानी में मैं तजे भोग रहा तव प्रेम में आतुर ॥
रही बात विशुद्धता की, वह होनी न, जीव चहे जितना हो बहादुर।
दृग मेरे मुँदें इसके पहले मुख से कभी तो कुछ बोल दो ठाकुर ! ॥

मैंने महत्तम से किया प्रेम, महत्तम दुःख भी जायेगा झेला।
ना मिले हो न मिलोगे कभी, फिर भी न घटाऊँगा प्रेम का रेला ॥
सार्थकता करे जीवन की, इसके लिए प्रेम अलम् है अकेला।
प्राप्ति न हो न हो, मैंने तो प्रेम के हेतु ही प्रेम का खेल है खेला ॥

—❀—

पाताल लोक : चिता-मंगल

* महायात्रा *

कठिन कराल दीर्घकाय रोग-कानन में
आशा-लतिका को लहराती रही लाड़ली।
पत्र कभी तार कभी दक्ष वैद्य-द्वार, यों ही
धीरे-धीरे हमको रुलाती रही लाड़ली॥
इष्ट-मित्र-मण्डली को इधर बँधाती धैर्य,
स्वर्ग-मार्ग उधर बनाती रही लाड़ली।
बलि-बलि जाती, लाख लाड़ जो लड़ाती, रस-
घन बरसाती आज जाती रही लाड़ली॥

मधुरिमा - मज्जित प्रणय - उपवन - मध्य
बीज मोद-मंगल के बो गयी तो बो गयी।
अल्प-सी वयस और अल्प-से शरीर में ही
कालदूत रोग-ग्रस्त हो गयी तो हो गयी॥
रसक्रीडाकारिणी प्रपीडा - महाराशि - मग्न
हो कर अधीन-दीन खो गयी तो खो गयी।
लोचन की तारिका कुमारिका का संग छोड़
सारिका हमारी आज सो गयी तो सो गयी॥

खाने-खेलने की थी वयस कितनी थी अभी,
आयु साढ़े तेइस की निपट नवेली थी।
रूप की उजागरी थी, गुण-गण-आगरी थी,
नागरी-सी नागरी थी, बड़ी अलबेली थी॥
रोग - परिपीडित दिनेक दुहिता के संग
शान्त-जैसी सोयी चारु चटक चमेली थी।
प्रातःकाल देखी गयी देह हिम-रूप, माता
मृत्यु-खेल खेली, पड़ी दुहिता अकेली थी॥

रात्रि शनिवार की थी, तार नहीं भेजा गया,
रोयी बार अन्तिम विमल सर्व धैर्य हर।
तड़प-तड़प कर सोयी सुता संग लिये,
लोग नहीं बोले, जान सोयी है कुशलतर॥
प्रातः प्राण-हीन, और बल मिली, तार गया,
आये पति, बोले देख अग्रज छलक कर।
"कल नहीं आये जब विकल बड़ी थी, आज
क्रिया करने को दौड़ आ गये ललक कर"॥

हँस-हँस कर कभी बाजे बजवाये जहाँ,
दौड़ चले आज वहीं रोने को, रुलाने को।
'आये यह भैया, यह भैया' जहाँ होता रहा,
दर्शते वहीं हैं कोहराम-सा मचाने को॥
पाँच वर्ष पूर्व तेरी डोली उठवायी जहाँ,
आये हैं वहीं से आज अर्थी उठवाने को।
हो कर युगल जहाँ फूले न समाये वहीं
आये आज कोरे-से अकेले लौट जाने को॥

दीर्घरोग-वश थी विपुल क्षीणकाय हुई,
जो भी देखता था वही ठंढी साँस भरता।
पतिदेव की भी दृष्टि टिकती न मुख पर,
शंका का विचार था न मन में ठहरता॥
आये मृत्यु-तार पर, प्रिया को निहार चन्द्र-
मुख पर से न हटने को हाथ करता।
मृत्य से विकृति लेशमात्र नहीं आयी, मुख-
मण्डल में छायी जाने कहाँ की सुघरता॥

क्याऽब मुझसे तू एक शब्द बोलने की नहीं,
चूता है अमृत तेरे मीठे-मीठे बोल में।
तेरा मुँह खाली हो गया है उन बोलों से कि
कसम न बोलने की खा ली है किलोल में?
क्यों तू भूलती है मुझे तीनों भुवनों का सुख
होता है सुलभ तेरे नेत्र-जिह्वा-डोल में?
तू तो चली छली मृत्यु-यज्ञ का हविष्य बन,
खड़ा हूँ अकेले मैं मनोरथों के टोल में॥

अब क्या मैं तुझे नहीं प्यारा रहा,
मुझे छोड़ के प्यारी ! कहाँ को चली ?
पड़ी रोग की मार से खाट के ऊपर,
क्यों फिर स्वर्ग को तू उछली ?
हुआ ऐसा क्या स्वर्णिम काया को था
चुपके इसे छोड़ के जो निकली ?
मन मेरा तो नाचना चाहता,
क्यों इसे देती न इंगित - रंगस्थली ?

जननी की पुकार सुनी असुनी करे
ऐसी तो तू कभी होती नहीं थी।
अरी ! शान्ति-सुधा से शरीर शरीर को
ऐसे तो तू कभी धोती नहीं थी॥
तुझे क्या हुआ आज कहाँ खो गयी ?
कहीं ऐसे तो तू कभी खोती नहीं थी।
तज निद्रा लली ! उठ, माँ के गले लग,
ऐसे तो तू कभी सोती नहीं थी॥

परिवार - प्रेम - कला - पण्डित प्रकाण्ड तू थी,
आज काण्ड कौन-सा रचाये चुप लेटी है ?
जिनकी जुड़ाती रहीं आँखें तुझे देखकर,
छाती आज उन्हींकी तचाये चुप लेटी है॥
नाचती सदैव रही इंगित हमारे पर,
आज नाच हमको नचाये चुप लेटी है।
तू तो दौड़-दौड़ पोंछती थी स्वजनों के अश्रु,
आज रोवारोहट मचाये चुप लेटी है॥

हम जानते थे बड़ी सगी है हमारी लली,
देख लो सगप्पन को गोड़ के चली गयी।
किसकी न जाने किस बात पर रूठी यों कि
सारी दुनिया से मुँह मोड़ के चली गयी॥
हम बूढ़ों के तो नहीं जीवन का तोड़ हुआ,
वज्राघात कर छाती तोड़ के चली गयी।
मत बोलकारो, अब बोलेगी किसीसे नहीं,
हमको सदा के लिए छोड़ के चली गयी॥

प्यार कितना तू करती थी हमें बेटी ! हाय !
थोड़ी वय में सिधार स्वर्गधाम, गयी मार।
तूने तो कपाल फोड़वाने का प्रबन्ध किया,
हम कहाँ पटक दें, फोड़ें अपना कपार ?
सुर-वृन्द से तू चली आरती उतरवाने,
हम कहाँ जायें अब ले वियोग-व्यथा-भार ?
उठने के पूर्व मुँह खोल के बता दे यह
कैसे हम तेरे बिना जीवन सकेंगे धार ॥

बैठे हम रहे, उठ चली तू हमारी लली !
हाय ! हम लोगों ने महान पाप हैं किये।
फूटी नहीं आँख ऐसा दिन देखने के पूर्व,
अब विष पियेंगे, सुधा तो हैं सदा पिये ॥
नहीं, नहीं, ऐसे तू अकेले जा सकेगी नहीं,
वृद्धा जननी को यों न छोड़ जाना चाहिए।
जाती है तो हमें लिये चल अपने ही साथ,
तेरे बिना कौन है जियेंगे जिसके लिए ?

गयी तो गयी ही लली, सामने न आनी अब,
छाती स्वजनों की सोच-सोच दरकायेगी।
धैर्य धारने के सिवा और नहीं चारा, पर
क्षमता कहाँ से धैर्य धारने की आयेगी ?
चाहे जितना भी अब रोइये, रुलाई यह
आज-आज रोने से उबर तो न जायेगी।
कुसुम-कली की याद, लाड़ली लली की याद
जभी जब आयेगी तभी तब रुलायेगी ॥

लाली गजमुक्ता, लाल लाल के सदृश मान्य,
जन भाग्यशाली ही तो लाली-लाल पाता है।
मुक्ता-रत्न हमें जो प्रदान करता है देव,
जिसी क्षण चाहता है हमसे छिनाता है ॥
गया तो गया ही, अब शोक करो तो लो कर,
बिगड़ा विधाता का तो कुछ नहीं जाता है।
दया-मया किसी पर करता समय नहीं,
आता है समय तो न कोई टाल पाता है ॥

डोलती न बोलती न खोलती नयन हाय !
जाने किस ओर मृत्यु-मदिरा पिये चली।
कोई कहता है मन्दभाग्य कोई भाग्यवती,
कन्धदानियों के बीच पति को लिये चली॥
बिदा हुई आप साढ़े तेइस की आयु में ही,
सुता साढ़े तीन की जहान को दिये चली।
हमसे हमारी प्रिया दूर थी पचास मील,
दूर-दूर ही से बड़ी दूर के लिए चली॥

राज-सा न राज न समाज-सा समाज, तभी
थोड़े ही दिनों में नारि नवला चली गयी।
भाई-सा न भाई न बहन-सी बहन रही,
धरणि से प्रीति-धारा धवला चली गयी॥
चार दिन पूर्व चढ़ी चरण हमारे पर,
आज चढ़ कन्धे प्रिया सफला चली गयी।
जीवन-सा जीवन हमारे अब हाथ कहाँ,
विमल चरित वाली विमला चली गयी॥

छवि अविवाद गयी, मूर्त्ति अविषाद गयी,
पुष्टि-मूल खाद गयी जल चिता-आग से।
शीलगुण-सार गयी, चरित अपार गयी,
मंगल - बहार गयी स्वर्गपुरी - माँग से॥
हृदय की टूक गयी, माधुरी विमूक गयी,
कोयल की कूक गयी भरी अनुराग से।
कोटि कष्ट झेल गयी, मृत्यु-खेल खेल गयी,
कञ्चन की बेल गयी जीवन के बाग से॥

मुख से कफ़न हटा अग्रज ने ऐसा कहा,
"लो राजेश ! देख लो, नहीं तो पछताओगे।
एक बार और चाहे देख लो विमल मुख,
फिर विमला का मुख देख नहीं पाओगे॥
आज तो जलाये दे रहे हो प्रिया का शरीर,
अब यहाँ आओगे तो साथ किसे लाओगे।
अब ससुराल में ही आपके लिए क्या रहा,
होगी बड़ी बात यदा-कदा चले आओगे"॥

यही तीन मास पूर्व प्यारी ससुराल रही,
चलने लगी थी भीत पर हाथ धार-धार।
कार्य चार करती, रसोईं भी रचाती बैठ,
दीन पड़ जाती कभी पौरुष से हार-हार॥
साहस ही साहस था स्नेह-स्नेह शेष रहा,
मधुर उमंगें हरीं समय ने मार-मार।
दर्शन ही दर्शन थे, वे भी हो गये अदृश्य,
जल के चिता में आज प्यारी हुई छार-छार॥

अपने जनों को जानती थी अपना-सा, आज
नाता अपनों से तोड़ताड़ के चली गयी।
ममता-विवश स्वजनों के हाथ सन्तति को
सौंप-सौंप, हाथ जोड़जाड़ के चली गयी॥
आप तो चिता में जल करके भसम हुई,
हमें जलने को छोड़छाड़ के चली गयी।
थोड़ी-सी वयस में कपाल फोड़वा के प्रिया
भाग्य को हमारे फोड़फाड़ के चली गयी॥

बोने चला था सुधा के, हलाहल
के दृढ़ बीज 'दयालु' मैं बो गया।
कोई मुझे बतलाता नहीं कहाँ
से कहाँ तू गयी, क्या से क्या हो गया॥
देखने के लिए तू नहीं पास है
तेरे बिना किस भाँति मैं रो गया।
भामे! कहाँ मुझे छोड़ के तू गयी,
तेरे बिना मैं अनाथ-सा हो गया॥

इसीसे न जाती थी यहाँ से हट कर बेटी,
जानती थी मेरे प्राण गत यहीं होएँगे।
"कितने वहाँ हैं लोग देखने जो दौड़ पड़ें,
यहाँ", कहती थी, "सब दल हमें जोयेंगे॥
चार दिवसों की है हमारी ससुराल हुई,
चार वहाँ रोयेंगे, हजार यहाँ रोयेंगे"।
कहा सच कर चली छोटी-सी हमारी लली,
बूढ़े हम बैठे जन्म-भार अभी ढोयेंगे॥

सास बिना साँसत जिसे थी ससुराल सदा,
बार-बार आ के प्रीति-भरी खली हमको।
हम उसे लाख समझायें, कहें भला-बुरा,
वह मानती थी सगी बड़ी भली हमको॥
पत्र बिना, तार बिना, किसी समाचार बिना
आयी खड़ी द्वार मिलती थी लली हमको।
इतना मधुर, ऐसा प्रिय और बाँका यही
मैका आज छोड़ चली, छोड़ चली हमको॥

आठ वर्ष की हो सुता निर्मला सिधार गयी,
जिसके चरित, गुण, रूप नहीं कहने।
तेइस की हो के बिदा वैसी विमला भी हुई,
छाती पर वज्राघात दोनो हमें सहने॥
कैसा हा! विधाता, काल कैसा, भाग्य-चक्र कैसा,
पूछ लिये छोटे, बड़े-बूढ़े दिये रहने।
दोनो एक ठौर गयीं, मधुर-मधुर बातें
स्वर्ग में करेंगी अब दोनो बैठ बहनें॥

पञ्चतत्त्व-निर्मित-शरीर-प्राप्त प्राणी कौन
एक दिन पञ्चतत्त्वगत नहीं होता है?
खरे-खरे रूप-शील, भरे-भरे यौवन को
अति धुनता है शीश कोई जब खोता है॥
इतनी त्वरा थी कौन मृत्यु-तटिनी में जो कि
तेइस की आयु में लगाया प्रिये! गोता है?
माता का बुढ़ापा रोता, पति की जवानी रोती,
तेरी दुहिता का, देख, बालपन रोता है॥

बेंदी कभी भाल पर धार के दिखायी नहीं,
धरी की धरी-सी रही पायल भी बजनी।
रुचि थी अपार, अन्य आभूषण धारे कब,
रही लज्जा-भूषण से प्रेम की प्रमथनी॥
पाँच वर्ष पूर्व था चढ़ावा लिया चारु और
आज उतरावा हमें दे के चली सजनी।
फूँक के गले का हार, ले चले गले का हार,
मुंदरी, कँगन, बेंदी, झुमकियाँ, नथनी॥

खाये-अनखाये पड़े रहेंगे स्वतन्त्र तब
कौन पास आके, अनखा के हमें टोकेगा ?
इधर-उधर दिन भर का सपाटा-सैर
तेरे बिना सत्याग्रह कर कौन रोकेगा ?
झूठ-सच चरित हमारे पर शंका कर
मधुर-मधुर वाक्य-भाले कौन भोंकेगा ?
रस-भरे, राग-भरे, आभा-भरे, आशा-भरे
बड़े-बड़े लोचनों से कौन अवलोकेगा ?

अनुराग-सागर उमड़ता मिलेगा कहाँ,
जिसका दिखायी नहीं देगा कहीं ओर-छोर ?
विपदा की मारी आज मेरी दुनिया में प्रिये !
तेरे बिना कौन पुण्यभावों में करे विभोर ?
मलिन विविध आपदाओं से विलोक चित्त
कौन मधुदृष्टि से सकेगा रस-बीच बोर ?
तृप्ति किसे होगी अवलोक के हमारा मुख,
तृषित दृगों से कौन देखेगा हमारी ओर ?

विरति-निधान बने हम घूमते थे, हमें
पाठ अनुरति का पढ़ा के गयी यामिनी।
हठ कर, प्रण कर, धन जोड़-जाड़कर
सोने की अँगूठी पहना के गयी दामिनी।।
अब कौन देखेगा, इसी से व्यय-भार-मिष
बावन की वह उतरा के गयी कामिनी।
कष्ट तो किसी के कटे, तोष इसका, तथापि
पागल-सा हमको बना के गयी भामिनी।।

आप लाख मारे, हमें छूने दुहिता को दे न,
मोह-ममता की मदिरा में रहे चूर-चूर।
"मैं जो न रहूँ तो इसको तो मार डालो तुम"
ऐसे कहे, हमें डाँट डाले बना क्रूर-क्रूर।।
प्रतिमा पवित्र प्रीति-प्रणय की प्राणवती,
पापस्पर्श से जो बनी रहे नित्य दूर-दूर।
ऐसी करनी की हाय! घरनी हमारी गयी,
हमको हजार बार देखती थी घूर-घूर।।

तेइस की प्रिया हाय ! काल का कवल हुई,
गगन गगन गया, सलिल सलिल को।
क्षिति क्षिति-मध्य मिली, अग्नि अग्निगत हुई,
अनिल का अंश उड़ जा मिला अनिल को॥
शीश पर डाल के विपत्ति का पहाड़ गयी,
घर को उजाड़ गयी, फाड़ गयी दिल को।
तिल-तिल दिल को चुराने में समर्थ आज
पति-पाणियों से लगी लेने जल-तिल को॥

जीवन-तिमिर में बिखेर प्रेम-ज्योति-कण
खो गयी सजीवन हमारी हाय ! मूर है।
डोलती न पास है न बोलती मधुर, रस-
भावना से हमें देख होती नहीं चूर है॥
दौड़ी चली आये ढूँढ लेने को हजूर कहाँ,
क्या करे विधाता के लिखे से मजबूर है।
एक हो पचास मील दूर कल प्यारी रही,
आज जाने कितने पचास मील दूर है॥

धाम-जैसे धाम वाली, चाम-जैसे चाम वाली,
काम-जैसे काम वाली बड़ी मतवाली थी।
वदन ललाम वाली, वाणी रसधाम वाली,
शील अभिराम वाली लोक से निराली थी॥
वन्दन-प्रणाम वाली, गुप्त राम राम वाली,
दिव्य धाम वाली प्रिया पुण्य-प्रतिपाली थी।
कोटि गुणग्राम वाली, सेवा निशियाम वाली,
'छोटी' नाम वाली बड़े-बड़े काम वाली थी॥

भ्राजती थी तरल तरुणता का तीर्थराज,
ममता की मथुरा, दया की दिव्य द्वारका।
जिस ओर जाती उस ओर बन जाती प्रिया
इष्ट.- मित्र - सुहृद - स्वजन - नेत्र - तारिका॥
रस-भरी बात से, मधुर दृष्टिपात से थी
दुःख - दल - निखिल अमंगल - निवारिका।
सुन्दर वदन वाली, बड़े-बड़े मन वाली
छोटी गयी छोड़कर छोटी-सी कुमारिका॥

चारो ओर चलती कुचालें अवलोक कर
मानो मोह भव का भवानी चली छोड़ के।
आयु साढ़े तेइस की लिये लहराती हुई
जगमग जाहिर जवानी चली छोड़ के।।
कानि-कान्ति-कलित मधुर रस-खानि खरी
आधी-तीहो प्रणय-कहानी चली छोड़ के।
सुप्रतीति - प्रीति - भीति - रीति - अनरीति - भरी
शानी एक अपनी निशानी चली छोड़ के।।

आँखें फाड़-फाड़ कर दिल को चुराती, चली
फाड़के हमारा दिल विधि के विधान से।
जाके बेबसी में ठौर स्वर्ग में बनायी, यहाँ
तेइस बरस बनी रही आन-बान से।।
मञ्जुल मयंकमुखी भूषित थी भूरि-भूरि
मंगलनिधान प्रीति-प्रणय के ज्ञान से।
कितनी करुण सुता, कितने उदास कन्त
जान यदि पाये फाट पड़े आसमान से।।

कार्यालय आदि को सिधारते समय "शीघ्र
आना" कह मन हरने के लिए बैठी है।
लौटकर आऊँ तो ललक-भरी दौड़कर
मोद से हृदय भरने के लिए बैठी है।।
सुख और दुख में बँटाके, बँटवा के हाथ
सूनापन दूर धरने के लिए बैठी है।
तू तो गयी, किन्तु तेरी दुहिता दुलारी अभी
आदर हमारा करने के लिए बैठी है।।

* निमज्जन *

बड़ी-बड़ी आँखों से सुधा-सी दृष्टि डालकर
भारी-भारी हृदय को करती थी तूल-तूल
कभी-कभी हाँ ! हाँ ! किसी-किसी बात पर कुछ
कर बैठती थी रोष, जाती फिर भूल-भूल ॥
मैंने तुम्हें यह कहा, मैंने यह किया हाय !
ऐसा भाव जिसे बन जाता रहा शूल-शूल ।
फूल-जैसे तन वाली, फूल-जैसे मन वाली,
फूल-जैसे मुख वाली आज हुई फूल-फूल ॥

तेरे बन्धु, तेरे पति, टोले के सुहृद-वृन्द
तेरे फूल बीनते विभोर हुए जाते हैं।
तेरी सुता, तेरी जो भतीजी है, भतीजा जो है,
तेरे फूल बीनने में लगन दिखाते हैं ॥
"ले चलो अलम् हो गये", किसी ने कहा यों, "अरे!
बीने नहीं जाते सब बीने नहीं आते हैं"।
बीने हुए फूल तो त्रिवेणी में मिलेंगे प्रिये !
शोच उनका है जो कि छूटे रहे जाते हैं ॥

जीवित न अन्तिम वदन देख पाये पति,
ऐसा कालदेव आये पास रुजाधीन के।
कौन उन्हें चिन्ता कौन पास और दूर कौन,
जभी जिसीको ले चलें जगत से छीन के ॥
छार परिणीता चिता में कि कवि-जीवन है,
देखे नहीं जाते नेत्र निपट मलीन के।
दीन-दीन हाथों स्नेह-लवलीन मानस से
बीन-बीन लाये फूल वनिता नवीन के ॥

कौन सी कमी थी स्वर्ग-लोक में जो मेरी एक
छोटी निधि पर देव-वर्ग ललचा गया।
मृत्यु-सरिता में स्नान करने के उपरान्त
रूप हा ! अनूप जला चिता में दिया गया ॥
फूल-फूल कर फूल-जैसा फिर फूल जाता,
प्यारा वही रूप फूल ही का रूप पा गया।
प्रणय का सागर समाया जिसमें था, वह
रस का कलश एक हाँडी में समा गया ॥

परिणाम विश्व को प्रणाम मात्र हो के रहा,
मारी व्याधिओं की चली लाड़ली हमारी है।
रच-रच विधि ने सँवारी जो प्रिया थी हाय !
ले गयी उसीको आज काल की सवारी है।।
जिस काया-श्री ने कान्ति धारी अग्नि के सदृश,
भस्म करने को उसे अग्नि ही पधारी है।
फूल-भार भार्या के रहे हैं अवशेष फूल,
छोटी सारी हाँडी में समायी 'छोटी' सारी है।।

लो आ गये खोदने, अशुभ शुभ आयी घड़ी,
द्वार तरु-तले से भी हाँडी आज जाती है।
देखो वह निकली, हमारी बेटी दे दो हमें,
अम्ब कहती है तभी थैली चली आती है।।
अम्ब की दुलारी बेटी, भाई की बहन प्यारी
हाँडी से निकल कर थैली में समाती है।
"छोटी! छोटी! आज हमें जाती हो निपट छोड़े",
ले करके थैली माँ हृदय से लगाती है।।

पुत्तली दृगों की चली, पति-पाणियों में चली,
चली दुहिता भी भेजने को अम्ब प्यारी को।
एक दिन लेने किस भाँति यही आये, आज
लिये किस भाँति चले लाड़ली हमारी को।।
मारो कोई पत्थर हमारा सिर फूट जाय,
गवाँ दिया हमने सलोनी को, दुलारी को।
चलो सभी लौट चलें घर में दफ़न होने,
अब क्या रहा है इस विपदा की मारी को ?

हो गया विवाह, किसी भाँति पाँच वर्ष चला,
तेरे किन्तु ध्यान से पुरानी नहीं भू गयी।
योग्य पति और जेठ-देवर पा बड़े-बड़े
छोटी ! तुझे छोड़ हम छोटों को न बू गयी।।
ऐसे यहाँ रही ब्याही जान नहीं पड़ी, जैसे
मानस में प्रणय की मदिरा न छू गयी।
अम्मा, चच्चू, दद्दा की जपेगा अब माला कौन ?
छोटी! बेटी छोटी ! हाय छोटी ! कहाँ तू गयी ?

ले चले अरुण-नीली-श्वेत आपगा के हेतु
पीली-पीली थैली में रसीली को समेट कर।
दुहिता अबोध है सुबोध अस्थि-थैली साथ,
रह-रह होते हैं विकल देख-देख कर॥
गोद कभी लेते हैं, लगाते उर से हैं कभी,
घूर-घूर कभी देखते हैं नेत्र भर-भर।
नाविक ने मधुर सुनायी फटकार यह,
"बाबू अरे! इतना कलपिये न नीर पर"॥

"प्यार कर ले जो करना हो सुता! एक बार,
गंगा में समाने का है आज अम्ब का विचार"।
"मैं करूँगी, तुम न करोगे?" "करूँगा क्यों नहीं ?"
सुता-पिता ने ली अस्थि-थैली उर पर धार॥
पूर्व गंगा-विलय के उभय ने एक को कि
एक ने उभय को अतीव दिखलाया प्यार ?
"बेटी! हाथ जोड़ कर गंगा से विनय कर,
"मेरी अम्बिका को अम्ब! रखना भली प्रकार"॥

आह-क्रिया अपनी, प्रदाह-क्रिया तेरी कर,
तेरे बिना दिन-दिन दहे चले जाते हैं।
प्रिय का वियोग जो असह्य है विरागियों को,
हम कवि रागी वही सहे चले जाते हैं॥
अन्तिम वियोग का भी आलम है ऐसा आज
हम तेरे बिना कुछ कहे चले जाते हैं।
तेरी अस्थि गंगा-बीच चले हैं बहाने, पर
तेरी अस्थि-गंगा-बीच बहे चले जाते हैं॥

मेरी मोहनी! जा चली, रस की घनेरी तेरी
प्रणय-कलाएँ पथ हमको दिखायेंगी।
लाघव से तुझे सुता-रूप में सँभाले हुए
जीवन की सब प्रेरणाएँ हमें पायेंगी॥
शोचना न विवश हमारा परित्याग कर,
मानस से स्मृतियाँ न तेरी कहीं जायेंगी।
पुण्य जान्हवी में आज तेरी अस्थियाँ हैं मिलीं,
एक दिन अस्थियाँ हमारी यहीं आयेंगी॥

:—:

आकाश-लोक : रस-वर्षा

॥ पूर्वधारा ॥

रसवती तेरी करुणा से सरस्वति देवि !
भव्य भाव-वैभव से जायेगा हृदय भर।
काव्य की विविध सुषमाएँ हैं अधीन तेरे,
जिनके बिना न जग-बीच कोई ज्योति वर॥
तेरा भी चलेगा काम, मेरी भी बनेगी बात,
अनायास होऊँगा विमल कला-ज्ञान धर।
सेवक न चाहेगा कि छूटे स्वामिनी की टेक,
तू है हंसवाहिनी विराज मेरे हंस पर॥

मैंने कई बार मिल देखा न तुम्हारा रूप,
देखा तब जान पड़ा कुछ तुम बाँकी हो।
बाँक-वाँकपन से प्रयोजन मुझे है कौन ?
जाने तुम मेरी कौन आ गयी कहाँ की हो॥
लम्बी दुनिया को छोड़ तुमसे लिया जी जोड़,
मेरी सहचारिणी सृजी जो बिधना की हो।
चाहे ठुकराओ लगा हृदय से चाहे रखो,
मेरी दुनिया में अब एक तुम्ही बाकी हो॥

तेरी मैं रूपप्रभा से प्रभान्वित शुभ्रप्रभाव को पा रहा हूँ।
तेरे स्वभाव की मञ्जुलता से बड़े ऋजु भाव को पा रहा हूँ॥
मेरी वियुक्ति प्रयोज्य तुझे नहीं, हाँ ! मैं लगाव को पा रहा हूँ।
भाविनि ! तेरे अभाव में मैं अपने ही अभाव को पा रहा हूँ॥

तेरी नवायु को, कान्ति-निकेतन रूप को शीश नवा कर बैठा।
सोयी-सी आग जो थी उर में उसमें अनायास हवा कर बैठा॥
पैर न थे जिसमें पड़ने वही प्रेम की राह रवाँ कर बैठा।
गोरे गुणी रसगर्भित गात से होश-हवास गवाँ कर बैठा॥

जानता कहाँ था एक-दो ही बार के मधुर
दर्शन मिले कि इस भाँति अनुरागूँगा ?
कहाँ पता था कि मैं तुम्हारे मञ्जु रूप पर
टूट यों पड़ूँगा कि विचार-भूमि त्यागूँगा ?
होना था हुआ ही वह, तुमसे हुआ ही प्रेम,
प्रांगण से इसके किधर अब भागूँगा ?
नहीं अर्पने को कुछ मूल्यवान मेरे पास,
कैसे तुमसे मैं अनमोल वस्तु माँगूँगा ?

देखा परस्पर दर्शनों में पहले तो यही
कहीं रस-रंग का विचार नहीं कोई है।
संग-संग से उद्भूत होता है अवश्य काम,
इस गीता-ज्ञान से उबार नहीं कोई है॥
मैं भी तो मनुज हूँ न, प्राणी धरती का एक,
संसृति में विजित-विकार नहीं कोई है।
कान्तमनोरथ-पूर्ति-आशा अब कैसे करूँ,
तुम पर मेरा अधिकार नहीं कोई है॥

रूपामृत सामने सुलभ अनमोल हुआ,
ललक-ललक कर क्यों नहीं पियेंगे हम ?
दैवयोग से समीप आ गयीं हमारे तुम,
झाँकी ममता-मयी उरान्तर सियेंगे हम॥
जैसे मिलीं वैसे मिलती ही रहना सदैव,
तुम पर दिल फेंक-फेंक के जियेंगे हम।
भेंट हमसे जो करने को नहीं आओगी तो
किसका वदन देख-देख के जियेंगे हम ?

पहले एकान्त में मिलीं क्या नहीं ? देखा क्या न
मानस में मेरे कुछ आता है न जाता है ?
दोगी बतलाने तो समय बतलायेगा कि
कैसा तुमसे ललाम लोकातीत नाता है॥
है तो प्रेम का पसार, रूप प्रेम के हजार,
प्रेम-जैसा प्रेम तप-संयम सिखाता है।
कैसे यह कहूँ मुझे छोड़ के न जाओ कहीं,
तुम चली जाती हो तो मन टूट जाता है॥

गृह-कार्य तुम्हें लगे रहेंगे सदैव, मेरी
याद कर उनसे उबरना, उबरना।
अनुदिन मेरे भाग्य उज्ज्वल सँवारने को
सीधे-सादे वेष से सँवरना, सँवरना ॥
स्वार्थास्वार्थ-अर्थानर्थ कुछ साधने के लिए
स्नेह-वीथिकाओं में विचरना, विचरना।
चाहे अपने को मत भेंट करो, भेंट करो,
भेंट है हृदय, भेंट करना जी ! करना ॥

रूप लहराती रहो, बार-बार आती रहो,
आते ही प्रसन्नता प्रसारती प्रचुर हो।
पकड़ तुम्हें लें, सुख-मन्दिर धनाढ्य बनें,
जीवन में तुम्ही ज्योति-ज्वलन का गुर हो ॥
ऐसा नहीं हो कि दूर हमसे सिधारो कहीं,
जैसी चमत्कारिणी हो वैसी ही चतुर हो।
हाय ! हाय ! कैसे रह पायेंगे तुम्हारे बिना,
तुम तो हमारी जान बड़ी ही मधुर हो ॥

क्या लावण्य, क्या माधुर्य, क्या सारल्य, क्या औदार्य,
रम्य रूप-कान्ति कवि से न कही जाती है।
कैसे क्या बताऊँ अब किस भाँति पाऊँ तुम्हें ?
क्या करूँ विवश विरहाग्नि सही जाती है ॥
शील की, सुजानता की, विरति की, संयम की
सुन्दर इमारत विशाल ढही जाती है।
जब से मिली हो कुछ समझ में आता नहीं
नदी जिन्दगी की किस ओर बही जाती है ॥

देख तुझे लेता हूँ नजर भर कर, पर
मिलने नजर से नजर कहाँ देती है ?
तेरे लिए मैं जो बावला हूँ दिनरात अरी !
भूल कर ध्यान तू इधर कहाँ देती है ?
मेरा मन-विहग उड़ान भरने को व्यग्र,
धर इसे लेती है, अधर कहाँ देती है।
तुझसे बहुत कुछ कहना मुझे है, पर
मुँह खोलने का अवसर कहाँ देती है ?

जीवन बाँधने के लिए सुन्दर सोने के तार की हो तुम लच्छी।
सीधे स्वभाव की, निर्मल भाव की, हो बिना दावँ की बुद्धि की दच्छी॥
कोमल काया लिये हुए डोलती, प्रेम से मेरे न होना अकच्छी।
इन्द्र की अप्सरा तो नहीं हो, पर जो कुछ हो वही हो बड़ी अच्छी॥

संजीवनी मृतक हृदय की बनी हो तुम्ही,
जीवन में जीवन की ज्योति को जगाओ तुम।
कली, फूल, फल भला क्या नहीं तुम्हारे पास,
मेरे उर-अन्तर की बेकली भगाओ तुम॥
रंग में तुम्हारे सराबोर दिनरात हूँ मैं,
मेरे रंग में क्षणेक रँग कर आओ तुम।
और कुछ चाहे करो चाहे नहीं प्राणेश्वरि !
अपना समझ पास बैठ भर जाओ तुम॥

मुँह खोल कर माँग सकता नहीं जो कभी,
अपनी समझ से, विवेक से उसे दे कुछ।
लेन-देन से ही तो सुखेन चलता है विश्व,
लेना कुछ देना कुछ होता ठीक, ले-दे कुछ॥
बेबस बहुत बकवास बेहवास मेरा,
तो है जो कठोर उर-अन्तर को भेदे कुछ।
लेने को तो सभी कुछ लिये जा रही है लली !
देने को भी तेरे पास बहुत है, दे दे कुछ॥

हस्ती किसीकी नहीं जो मुझे छुए, दूर से रूप निहार सकोगे।
मेरे मुखेन्दु से मुग्ध हुआ करो, केवल हाथ पसार सकोगे॥
ऐसे न संकट में पड़ी हूँ जिससे तुम्ही आ के उबार सकोगे।
मैं बहती हुई गंगा नहीं जिसमें तुम हाथ पखार सकोगे॥

तू जो चाहती हो कह, तेरा करने को हित
मधु-भरी आँख का इशारा भर चाहिए।
जीवन के सभी कार्य स्फूर्ति से करूँगा पूर्ण,
तेरे पाणिपद्म का सहारा भर चाहिए॥
तू है रस-सिन्धु जिसका न कहीं ओर-छोर,
मुझे बूँद चाहिए, गुजारा भर चाहिए।
कौन पैठने की कामना ही करता है लली !
मुझे प्रीति-नदी का किनारा भर चाहिए॥

अभी तो मिलाप करती हो निज कार्य-वश,
कार्य निपटा तो अलगाव ठान बैठोगी।
मिलते-मिलाते मनोदशा जो बदल गयी,
एक दिन मेरी अधोवृत्ति जान बैठोगी॥
चोर मेरे मन का पकड़ जब लोगी लली !
ऐसा तो न है कि ले कठोर मान बैठोगी।
जादा न करो तो हाय ! प्यारी ! यह वादा करो
छोटी-मोटी बात का बुरा न मान बैठोगी॥

बुद्धिमान हो जो तुम्हें किसीकी प्रतीति नहीं,
घर से, कहीं भी हो, अकेले मत जाना तुम।
कार्य अनिवार्य जब तक अटकाये रहे,
तभी तक हमको वदन दिखलाना तुम॥
दिन-दिन आना भेंटने को यदि हो विवश,
किसी न किसीको हाथ जोड़ साथ लाना तुम।
जैसे पुरुषों के पास वैसे ही हमारे पास
बाघ लगता है, न अकेली चली आना तुम॥

एकासन पर मुझे निश्छल-हृदय जान
पास बैठ जाने की उदारता में जादू है।
एक ओर जादूगर मधुर वचन तेरे,
अन्य दिशि रूप की अपारता में जादू है॥
हालचाल - चालढाल - व्यवहार - शीलगुण-
सारता में जादू है, असारता में जादू है।
विवश हुआ हूँ, क्या हुआ हूँ पता ठीक नहीं,
क्या मैं करूँ तेरी सुकुमारता में जादू है॥

तव शीलशोभी मधुरानन विलोक कर
मेरे प्रेमकातर नयन झुक जाते हैं।
जो आनन्द, जो विषाद तुम करती हो दान,
व्यक्त हो न पाता है, वचन चूक जाते हैं॥
कीले काव्य के बड़ा दिमाग दिखलाते हुए
बेदिमाग हो दिमाग में आ ठुक जाते हैं।
कैसे यह कह दूँ कि मिलने न आया करो,
आती हो तो मेरे सब काम रुक जाते हैं॥

मञ्जु रूप केवल जलाने के लिए है बना,
आओ बड़ा अच्छा है, न आओ और अच्छा है।
सुधा-गरलान्वित ले मेरे संग प्रेम-राग
गाओ बड़ा अच्छा है, न गाओ और अच्छा है॥
मेरे उरस्थल पर अम्बुज-करों से रस
नाओ बड़ा अच्छा है, न नाओ और अच्छा है।
मेरी ओर फूटी आँख से जो देखने की नहीं,
आओ बड़ा अच्छा है, न आओ और अच्छा है॥

जिससे रस-वर्षा हुई घनघोर अरी ! वही दृष्टि फिरा के न जा।
सुधा-दान-विचार नहीं करती तो हलाहल-घोल पिला के न जा॥
बिना तेरे बराबर व्याकुल मैं हूँ, सरासर अंग बरा के न जा।
इतना दुख दे सहते जो बने, दुख-सागर में तो डुबा के न जा॥

स्वार्थ ही चलाया, कब मेरा हाल पूछा ? बात
और हो तो सामने न लाओ, कहो लाती हो ?
अब क्यों मिलोगी जब निपटा तुम्हारा काम ?
मुझे कलपा के कल पाओ जिसे पाती हो॥
चली जा रही हो, देखते ये दीन लोचन हैं,
जाओ चली जाओ, अब जाओ, बस जाती हो।
हृदय में बस चुकीं, धँस चुकीं, गड़ चुकीं,
और गड़ने को मत आओ, तुम आती हो॥

विधि का विधान था हमारा जो मिलाप हुआ,
कार्य-वश आयी, निपटा है कार्य, जायेगी।
'कभी-कभी आती रहना' जो कहूँ तो क्या लाभ ?
भला किसलिए तुझे मेरी याद भायेगी ?
आ-आ कर मुझे रसस्नात करती तू रही,
जाने पर, चारा क्या, विपत्ति सिर ढायेगी ?
जा तू, तुझे जाना है, बिदा है, शुभकामना है,
अब फिर कहाँ मिलने के लिए आयेगी ?

रूप-गुण-शील से चमत्कृत चलन चारु,
तुम नहीं भाओगी तो और कौन भायेगा ?
छाये मम जीवन में और अनुमति किसे,
तुम नहीं छाओगी तो और कौन छायेगा ?
मेरी इनी-गिनी सिफ़तों को देख बलि-बलि
तुम नहीं जाओगी तो और कौन जायेगा ?
क्षण भर हँस-खेल, करने मिलाप-मेल
तुम नहीं आओगी तो और कौन आयेगा ?

जीवन को मेरे न निरस कर जाना कहीं,
जो है प्रफुल्लित तेरे दर्शनों के रस से।
चार-छः दिनों का साथ तेरा बड़ा जादू-भरा,
जान पड़ता है साथ चार-छः बरस से ॥
आना महकाने हृदयोपवन वनजाक्षि !
यौवन के मञ्जु मतवाले बास-कस से।
आना, चली आना, लली आना, अली आना तुम
आदर, सहानुभूति, प्यार या तरस से ॥

एक भी वासर बीता नहीं, कल शाम ही तो तुझे दी थी बिदाई।
आज सबेरे उठा बस रो पड़ा, आज मुझे तू न देगी दिखायी ॥
तू है जहाँ वहीं जाना पड़ेगा, प्रतीति है तेरी न होगी रुठाई।
तेरी निगाह जो सीधी रहे दुनिया में हुआ करे मेरी हँसाई ॥

तेरा मनोहर आनन क्या मिला दृष्टि डटी, हटने को न आयी।
आती रही जी जुड़ाती रही, करती रही मेरे दुखों की सफ़ाई ॥
बीच में आ गया हाय ! वही दिन दूर चली गयी ले के विदाई।
सुन्दरि ! तेरे वियोग के शोक में छाती फटी, फटने को न आयी ॥

आली-आली देह-उजियाली जो निराली लिये,
बिधना के हाथ की सँवारी तो न आ गयी।
मेरा हाथ थाम स्वर्ग-दृश्य दिखाने के लिए
देवांगना नभ से उतारी तो न आ गयी ॥
मेरी काल-बेल बजती है सोचता हूँ तब
चाही हुई स्कूटर सवारी तो न आ गयी।
दौड़ पड़ता हूँ देखने को पागलों की भाँति
अरे ! मिलने को कहीं प्यारी तो न आ गयी ॥

मञ्जु रूप केवल जलाने के लिए है बना,
आओ बड़ा अच्छा है, न आओ और अच्छा है।
सुधा-गरलान्वित ले मेरे संग प्रेम-राग
गाओ बड़ा अच्छा है, न गाओ और अच्छा है॥
मेरे उरस्थल पर अम्बुज-करों से रस
नाओ बड़ा अच्छा है, न नाओ और अच्छा है।
मेरी ओर फूटी आँख से जो देखने की नहीं,
आओ बड़ा अच्छा है, न आओ और अच्छा है॥

जिससे रस-वर्षा हुई घनघोर अरी! वही दृष्टि फिरा के न जा।
सुधा-दान-विचार नहीं करती तो हलाहल-घोल पिला के न जा॥
बिना तेरे बराबर व्याकुल मैं हूँ, सरासर अंग बरा के न जा।
इतना दुख दे सहते जो बने, दुख-सागर में तो डुबा के न जा॥

स्वार्थ ही चलाया, कब मेरा हाल पूछा ? बात
और हो तो सामने न लाओ, कहो लाती हो ?
अब क्यों मिलोगी जब निपटा तुम्हारा काम ?
मुझे कलपा के कल पाओ जिसे पाती हो॥
चली जा रही हो, देखते ये दीन लोचन हैं,
जाओ चली जाओ, अब जाओ, बस जाती हो।
हृदय में बस चुकीं, धँस चुकीं, गड़ चुकीं,
और गड़ने को मत आओ, तुम आती हो॥

विधि का विधान था हमारा जो मिलाप हुआ,
कार्य-वश आयी, निपटा है कार्य, जायेगी।
'कभी-कभी आती रहना' जो कहूँ तो क्या लाभ ?
भला किसलिए तुझे मेरी याद भायेगी ?
आ-आ कर मुझे रसस्नात करती तू रही,
जाने पर, चारा क्या, विपत्ति सिर ढायेगी ?
जा तू, तुझे जाना है, बिदा है, शुभकामना है,
अब फिर कहाँ मिलने के लिए आयेगी ?

रूप-गुण-शील से चमत्कृत चलन चारु,
तुम नहीं भाओगी तो और कौन भायेगा ?
छाये मम जीवन में और अनुमति किसे,
तुम नहीं छाओगी तो और कौन छायेगा ?
मेरी इनी-गिनी सिफ़तों को देख बलि-बलि
तुम नहीं जाओगी तो और कौन जायेगा ?
क्षण भर हँस-खेल, करने मिलाप-मेल
तुम नहीं आओगी तो और कौन आयेगा ?

जीवन को मेरे न निरस कर जाना कहीं,
जो है प्रफुल्लित तेरे दर्शनों के रस से।
चार-छः दिनों का साथ तेरा बड़ा जादू-भरा,
जान पड़ता है साथ चार-छः बरस से॥
आना महकाने हृदयोपवन वनजाक्षि !
यौवन के मञ्जु मतवाले बास-कस से।
आना, चली आना, लली आना, अली आना तुम
आदर, सहानुभूति, प्यार या तरस से॥

एक भी वासर बीता नहीं, कल शाम ही तो तुझे दी थी बिदाई।
आज सबेरे उठा बस रो पड़ा, आज मुझे तू न देगी दिखायी॥
तू है जहाँ वहीं जाना पड़ेगा, प्रतीति है तेरी न होगी रुठाई।
तेरी निगाह जो सीधी रहे दुनिया में हुआ करे मेरी हँसाई॥

तेरा मनोहर आनन क्या मिला दृष्टि डटी, हटने को न आयी।
आती रही जी जुड़ाती रही, करती रही मेरे दुखों की सफ़ाई॥
बीच में आ गया हाय ! वही दिन दूर चली गयी ले के विदाई।
सुन्दरि ! तेरे वियोग के शोक में छाती फटी, फटने को न आयी॥

आली-आली देह-उजियाली जो निराली लिये,
बिधना के हाथ की सँवारी तो न आ गयी।
मेरा हाथ थाम स्वर्ग-दृश्य दिखाने के लिए
देवांगना नभ से उतारी तो न आ गयी॥
मेरी काल-बेल बजती है सोचता हूँ तब
चाही हुई स्कूटर सवारी तो न आ गयी।
दौड़ पड़ता हूँ देखने को पागलों की भाँति
अरे ! मिलने को कहीं प्यारी तो न आ गयी॥

अयि भामिनि ! कैसे भुलायें तुझे, स्मृति-लोक में डोलती दाहिने-बाएँ ?
तुझे देख जहान को भूले हुए हैं, तुझीको भुलायें तो कैसे भुलायें ?
कहाँ जायेंगी ये मुखड़ा जो तेरा अवलोकती व्याकुल हैं कविताएँ ?
दृगों के सदा सामने छायी रहेंगी अदा न दिखाने की तेरी अदाएँ ॥

भोग से ऊपर मेरी सदा स्थिति, भोग के ऊपर जाता नहीं हूँ ।
प्रेम है, प्रेम है, प्रेम है हाँ ! कोई पाप-प्रवृत्ति छिपाता नहीं हूँ ॥
ऐसा कहीं मनोभाव नहीं जिसे खोल तुझे दिखलाता नहीं हूँ ।
प्रेम में है तो यही त्रुटि है तुझे देखे बिना रह पाता नहीं हूँ ॥

चञ्चल चित्त की वृत्तियाँ हैं, पर चेत हमें कभी खोना न चाहिए ।
स्वर्णिम काया मिली है तुम्हें, हमें देखने-छूने को सोना न चाहिए ॥
हो के मनोरथारूढ़ दिशाऽदिशा भार व्यथाओं का ढोना न चाहिए ।
भोग की भव्यता हो या न हो, पर प्रेम में ह्रास तो होना न चाहिए ॥

क्या अनुराग का शुद्ध स्वरूप इसे जग को खुल के दिखा दूँगा ।
तू समझे यदि पावन भावना भाविनि ! तो भला क्यों हिचकूँगा ॥
लाख हजार मनुष्यों के सामने मैं तुझे टेर गले लगा लूँगा ।
तेरी हूँ ताक में, तू मुझे ताक न तो भी सदा मुँह तेरा तकूँगा ॥

पड़ना तुझे रंग में जो न अभीष्ट इसीसे बड़ी रँगवाली है तू ।
भला कैसे मैं विस्मृति तेरी करूँ, दुनिया से नितान्त निराली है तू ॥
कहीं कोई है प्रेमी तो हूँ बस मैं, कोई आली कहीं है तो आली है तू ।
मम निर्मल प्रेम निहार ले री ! बड़े सुन्दर लोचनों वाली है तू ॥

तुमने उपजाये मनोरथ जो उनकी ही प्रवृत्ति को टोक सकोगी ।
मम प्रेम तो बाधित होगा नहीं, मिलना-जुलना भर रोक सकोगी ॥
कुछ और भला तुम क्या करोगी, विरहानल में ही तो झोंक सकोगी ?
तुम आँखों की अन्धी हुई हो, कहाँ शुद्धानुराग विलोक सकोगी ?

रुचता नहीं यौवन-रंग है तो न रतीश-पदाम्बुज सेने को आ ।
निज रूप के पावन मन्दिर में अनुरागाञ्जली लली ! लेने को आ ॥
अवलोक वरानन मैं खिलूँ तो इतने के लिए मत ठेने को आ ।
मम दृष्टियों से घिसने का तुझे भय है तो न दर्शन देने को आ ॥

भेंट करने जो चली आयी यही क्या है कम ?
चैन थोड़ी-बहुत तो मेरे लिए दे के जा।
आग भरती है आग से यही बताते लोग,
जलते दृगों को रूप-अनल से सेंके जा॥
जाना तुझे है ही लली ! जाती है चली जा, पर
एक बार और मुझे मुड़कर देखे जा।
इनके मधुर दान से जी भरता है नहीं,
मुट्ठी भर कमल इधर और फेंके जा॥

मेरे समान मिला तुम्हें प्रेमी तो रोष-विकास वृथा करती हो।
मैं तुम्हें कष्ट न देता, मुझे तुम आ के उदास वृथा करती हो॥
मार्ग में भेंटती हो तो तिरस्कृति-भावप्रकाश वृथा करती हो।
प्राणेश्वरी ! मम दृष्टियों से बचने का प्रयास वृथा करती हो॥

जानता हूँ, पर जानने से क्या, सही कहूँ बात सही कम होगा।
तेरे मुखेन्दु से मोह बढ़ा तो बढ़ा ही रहेगा, नहीं कम होगा॥
हृद्गत भावना का उमड़ा हुआ वेग भला क्यों कहीं कम होगा।
प्यार की जो सजा दे दे वही कम, जो दे इनाम वही कम होगा॥

सम्पदा में, रूप-सम्पदा में, सुकुमारता में
किसी भी प्रकार भला तेरे कहाँ सम हैं ?
प्रेम-गुण-गरिमा बताते अपनी अवश्य,
करते ढिठाई तेरी खा रहे कसम हैं॥
तेरे पड़ी पल्ले रागमाला न हमारी कुछ,
'न' ही हम पाये, सजा पाये नहीं कम हैं।
तुझे अपनी ही राह जाना है चली जा लली !
कौन तू हमारी और तेरे कौन हम हैं ?

रससिक्त भला कर देती न क्यों मतवाली जवानी की तेरी तरी ?
इसे सोच के सोच में कौन पड़े तुझे काया मिली कितनी सुघरी ?
चहे चाहने को रहूँ चाहता मैं, भला मेरे लिए कहाँ तू है धरी ?
यहाँ सामने जीवन का है निकास, न तू अभी जीवन में उतरी॥

तू दो-चार मुखड़ा क्या दिखा जाती मुझे
रूप-सिन्धु का अभिन्न मीन हुआ जाता हूँ।
कान्तिमयी काया, छलहीन देख के चलन
प्रेम के, प्रणय के अधीन हुआ जाता हूँ॥

अयि भामिनि ! कैसे भुलायें तुझे, स्मृति-लोक में डोलती दाहिने-बाएँ ?
तुझे देख जहान को भूले हुए हैं, तुझीको भुलायें तो कैसे भुलायें ?
कहाँ जायेंगी ये मुखड़ा जो तेरा अवलोकती व्याकुल हैं कविताएँ ?
दृगों के सदा सामने छायी रहेंगी अदा न दिखाने की तेरी अदाएँ ॥

भोग से ऊपर मेरी सदा स्थिति, भोग के ऊपर जाता नहीं हूँ।
प्रेम है, प्रेम है, प्रेम है हाँ ! कोई पाप-प्रवृत्ति छिपाता नहीं हूँ ॥
ऐसा कहीं मनोभाव नहीं जिसे खोल तुझे दिखलाता नहीं हूँ।
प्रेम में है तो यही त्रुटि है तुझे देखे बिना रह पाता नहीं हूँ ॥

चञ्चल चित्त की वृत्तियाँ हैं, पर चेत हमें कभी खोना न चाहिए।
स्वर्णिम काया मिली है तुम्हें, हमें देखने-छूने को सोना न चाहिए ॥
हो के मनोरथारूढ़ दिशाऽदिशा भार व्यथाओं का ढोना न चाहिए।
भोग की भव्यता हो या न हो, पर प्रेम में ह्रास तो होना न चाहिए ॥

क्या अनुराग का शुद्ध स्वरूप इसे जग को खुल के दिखा दूँगा।
तू समझे यदि पावन भावना भाविनि ! तो भला क्यों हिचकूँगा ॥
लाख हजार मनुष्यों के सामने मैं तुझे टेर गले लगा लूँगा।
तेरी हूँ ताक में, तू मुझे ताक न तो भी सदा मुँह तेरा तकूँगा ॥

पड़ना तुझे रंग में जो न अभीष्ट इसीसे बड़ी रँगवाली है तू।
भला कैसे मैं विस्मृति तेरी करूँ, दुनिया से नितान्त निराली है तू ॥
कहीं कोई है प्रेमी तो हूँ बस मैं, कोई आली कहीं है तो आली है तू।
मम निर्मल प्रेम निहार ले री ! बड़े सुन्दर लोचनों वाली है तू ॥

तुमने उपजाये मनोरथ जो उनकी ही प्रवृत्ति को टोक सकोगी।
मम प्रेम तो बाधित होगा नहीं, मिलना-जुलना भर रोक सकोगी ॥
कुछ और भला तुम क्या करोगी, विरहानल में ही तो झोंक सकोगी ?
तुम आँखों की अन्धी हुई हो, कहाँ शुद्धानुराग विलोक सकोगी ?

रुचता नहीं यौवन-रंग है तो न रतीश-पदाम्बुज सेने को आ।
निज रूप के पावन मन्दिर में अनुरागाञ्जली लली ! लेने को आ ॥
अवलोक वरानन मैं खिलूँ तो इतने के लिए मत ठेने को आ।
मम दृष्टियों से घिसने का तुझे भय है तो न दर्शन देने को आ ॥

भेंट करने जो चली आयी यही क्या है कम ?
चैन थोड़ी-बहुत तो मेरे लिए दे के जा।
आग भरती है आग से यही बताते लोग,
जलते दृगों को रूप-अनल से सेंके जा॥
जाना तुझे है ही लली ! जाती है चली जा, पर
एक बार और मुझे मुड़कर देखे जा।
इनके मधुर दान से जी भरता है नहीं,
मुट्ठी भर कमल इधर और फेंके जा॥

मेरे समान मिला तुम्हें प्रेमी तो रोष-विकास वृथा करती हो।
मैं तुम्हें कष्ट न देता, मुझे तुम आ के उदास वृथा करती हो॥
मार्ग में भेंटती हो तो तिरस्कृति-भावप्रकाश वृथा करती हो।
प्राणेश्वरी ! मम दृष्टियों से बचने का प्रयास वृथा करती हो॥

जानता हूँ, पर जानने से क्या, सही कहूँ बात सही कम होगा।
तेरे मुखेन्दु से मोह बढ़ा तो बढ़ा ही रहेगा, नहीं कम होगा॥
हृद्गत भावना का उमड़ा हुआ वेग भला क्यों कहीं कम होगा।
प्यार की जो सजा दे दे वही कम, जो दे इनाम वही कम होगा॥

सम्पदा में, रूप-सम्पदा में, सुकुमारता में
किसी भी प्रकार भला तेरे कहाँ सम हैं ?
प्रेम-गुण-गरिमा बताते अपनी अवश्य,
करते ढिठाई तेरी खा रहे कसम हैं॥
तेरे पड़ी पल्ले रागमाला न हमारी कुछ,
'न' ही हम पाये, सजा पाये नहीं कम हैं।
तुझे अपनी ही राह जाना है चली जा लली !
कौन तू हमारी और तेरे कौन हम हैं ?

रससिक्त भला कर देती न क्यों मतवाली जवानी की तेरी तरी ?
इसे सोच के सोच में कौन पड़े तुझे काया मिली कितनी सुघरी ?
चहे चाहने को रहूँ चाहता मैं, भला मेरे लिए कहाँ तू है धरी ?
यहाँ सामने जीवन का है निकास, न तू अभी जीवन में उतरी॥

तू दो-चार मुखड़ा क्या दिखा जाती मुझे
रूप-सिन्धु का अभिन्न मीन हुआ जाता हूँ।
कान्तिमयी काया, छलहीन देख के चलन
प्रेम के, प्रणय के अधीन हुआ जाता हूँ॥

होश गया, तोष गया, सारा है विवेक गया,
दीन-धर्म भूल कर दीन हुआ जाता हूँ।
है तो वयविहित भजन वासुदेव जी का,
तेरे वनजाक्षों में विलीन हुआ जाता हूँ॥

तुम चली आयीं कहाँ अपना जपाने नाम,
चित्त जब होना हरि-नाम-जाप-लय है?
मोह-ममता से मुक्ति अब भी नहीं है, जब
मित्र मान मृत्यु से मिलाप का समय है॥
कोई न कोई तो लगा रहता झमेला सदा,
आया तव रूप धार, चलो सदाशय है।
अच्छा! फिर इतना बताओ अब मेरे दिन
आये भाग्य के हैं कि अभाग्य का उदय है॥

छोड़ के जा न, तुझे बिना देखे दिनेक भी मेरा गुजारा न होगा।
सामने तू नहीं आयेगी तो दुखी नेत्रों का और सहारा न होगा॥
तू यदि मेरी नहीं हो सकी मुझसे बढ़ भाग्य का मारा न होगा।
तू मुझे प्यारी हुई इतनी जितना किसीको कोई प्यारा न होगा॥

खाक दुनिया की छानने से कौन होगा लाभ,
तेरा मिलना ही मिलना है सुखालय का?
अनुराग रूप का विवश करता है मुझे,
प्रश्न नहीं कोई सदाशय-दुराशय का॥
छोड़ के प्रपञ्च रुचिकर है विचार सदा
विषय के रूप का न, रूप के विषय का।
छोटी किसी ठौर में बसर कर लूँगा अलि!
दे दे एक कोना मुझे अपने हृदय का॥

आती घड़ी भर को, विराज कर मेरे साथ
मेरे प्राण को भी कर प्राणवान देती हो।
उपहार स्वेच्छित अवश्य करती हो भेंट,
मेरे मनोरथ पर कहाँ ध्यान देती हो?
आदर ही आदर दिखाती, प्यार कुछ नहीं,
पान मुझे देती हो, न रस-पान देती हो।
शालिनि! तुम्हें तो शोभनीय न कदापि यह,
अमृतकलेवरे! गरल-दान देती हो॥

आप तो पधारे हैं हजारों वार मेरे घर,
कभी-कभी आने में न शरमाया कीजिये।
सही है कि मेरा प्रेम आपको प्रकट हुआ,
पर इतना तो न गजब ढाया कीजिये॥
ठुकराने से जो कभी प्रेम छोड़ने का नहीं,
उस पर थोड़ा तो रहम खाया कीजिये।
और कुछ आप यदि कर सकते हैं नहीं,
मुझको तमाशा जान देख जाया कीजिये॥

दुख-लौह को मेरे तराशने को बनी हीरे की तू डली आ, डली आ।
यदि तू नहीं आयी तो क्या करूँगा ?कर ऐसा न री ! लली आ, लली आ॥
सदा निर्ममता की गली चलती, ममता की भी तो गली आ, गली आ।
गृह मेरे की राह जो भूली तो राह ही भूल के तू चली आ, चली आ॥

रूप की जैसी बनी है खरी-खरी वैसी ही तू नखरीली बड़ी है।
मैं स्मृति लाख दिलाऊँ मृगाक्षि ! करे स्मृति मेरी तुझे क्या पड़ी है॥
भाया तुझे मुझसे मिलना यह कैसी विलक्षण आयी घड़ी है।
मैं सपना यह देख रहा हूँ कि तू सच सामने आ के खड़ी है ?

रूप भरा जग में हर ओर है, मेरे लिए नहीं कोई सही है।
सुन्दर है न कहाँ वनिता, पर मेरे तो मानस की न चही है॥
वक्ष से मेरे अरी ! लग जा, इसके समकक्ष न मोद कहीं है।
होने को तो बड़ी है दुनिया, मुझे तेरे बिना कहीं कोई नहीं है॥

तू न मिले, जग-सुन्दरियाँ मिलें तो किस काम का होगा निदान।
मेरे लिए वसुधा में सुधा है तो तेरी ही काया है कान्ति-निधान॥
यों मुख खोलने वाला नहीं, करूँगा तो करूँगा सुधारस-पान।
जो भुजा-पाश में और को लूँ विष खाकर है मरने के समान॥

किसके पड़ा प्रेम के पाश में आ ! कहाँ आ गया मैं रमता-रमता !।
तुझसे नहीं मेरी कोई समता, मुझसे नहीं तेरी कोई समता॥
चहा दर्शन, लाले उसी के पड़े, कुछ छीने न प्रेम की है क्षमता।
मिली निर्ममता ही किसी की, नहीं मिलने को हुई ममता-वमता॥

हमसे जो कभी नहीं रीझने की, हठी प्रेम उसी पर आनते हैं।
उसीका सदा नाम रटा करते, उसीकी स्मृति-वीथियाँ छानते हैं॥
दृगों से लख आग में हाथ हैं डालते, दाह मुदप्रद मानते हैं।
हम जाते हैं ऐसे ठिकाने जहाँ पहुँचेंगे नहीं यह जानते हैं॥

थामे-दबाये सदा अनुराग हूँ, आर्त्त सुनाता नहीं सपने में।
क्या हुआ तूने जला रखा, मैं तुझे आग लगाता नहीं सपने में॥
तू मुझे भूली ही भूली रहे, तुझे भूल मैं पाता नहीं सपने में।
तेरे बिना कुछ भाता मुझे नहीं, मैं तुझे भाता नहीं सपने में॥

प्रेम-प्रदेश जिसे कहते, नहीं संशय कोई पड़ा वहीं हूँ मैं।
मैं तेरी याद में बावला हूँ, तुझे याद ही आता नहीं कहीं हूँ मैं॥
शीतल क्या तू करेगी इसे, अभी तो लिये छाती दही-दही हूँ मैं।
तू है सभी कुछ मेरे लिए, पर तेरे लिए कुछ भी नहीं हूँ मैं॥

मैं मुँह खोल नहीं सकता तो कभी अपना मुँह खोला करो तुम।
मैं कुछ बोल नहीं सकता, दो गुणागर वाक्य तो बोला करो तुम॥
मेरे मनोरथ से न चिढ़ो, इसे न्याय-तुला पर तोला करो तुम।
और नहीं कुछ चाहता हूँ, बस आँखों के सामने डोला करो तुम॥

हम रूप के चेरे हुए, कुछ भी न हमें अनुरागती जा रही हो।
हम जो तुममें रमा चाहते हैं तो क्षमा तुम माँगती जा रही हो॥
हम चाहते हैं कि तुम्हें पकड़ें तो हमें तुम त्यागती जा रही हो।
हम राग अलापते जा रहे हैं, तुम दूर को भागती जा रही हो॥

निर्मम ! तूने नकार दिया, अब दृष्टि भी मेरी तुझे गड़ती है।
है बड़ी बावली यौवनोमंग मनोहर रूप में जा गड़ती है॥
जानता हूँ सुन मेरी व्यथा-कथा सोच-विचार में तू पड़ती है।
क्या करूँ प्रेम का राग अलापे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती है॥

दो ही चार बार दिखला के मुहँ लिया फेर,
हमसे मिलाप अब तुम्हें नहीं भाता है।
आओ मिलने क्यों जब अपना निकाला काम,
किसीका किसीसे स्वार्थहीन कहाँ नाता है ?
हम हैं तुम्हारे बिना व्याकुल, तुम्हें है मौज,
मुख दिखा जाओ न सुभीता बन पाता है॥
रूप की अपूर्व पूर्वजन्म की हमारी तुम
मित्र हो कि शत्रु हो समझ नहीं आता है॥

मेरे प्रमत्त करों से सदैव बचाव तुम्हारा सहा नहीं जाता।
सूने-से जीवन में हर ओर अभाव तुम्हारा सहा नहीं जाता॥
फेरो न लोचन, रूठो न सुन्दरि ! ताव तुम्हारा सहा नहीं जाता।
छोड़ के जाने का नाम न लो, अलगाव तुम्हारा सहा नहीं जाता॥

कुछ मैंने कुबोल कहा तुझसे नहीं, और भी आगे कहा नहीं जायेगा।
तुझको तो चहा, तुझसे न चहा कुछ, और भी आगे चहा नहीं जायेगा॥
मुख-दर्शन तो करने दे, लहाती जो और नहीं तो लहा नहीं जायेगा।
मुझे छोड़के तू मत जा, मत जा, मुझसे बिना तेरे रहा नहीं जायेगा॥

किस बात का तू करती है गुमान, करोड़ों नवेलियाँ तेरे समान ?
दृग खोल के देख ले स्वर्णप्रभे ! मुझ - सा नहीं विश्व में प्रेमनिधान॥
नहीं प्रेम से कोई प्रयोजन है तो प्रदर्शनी ही मुझको पहचान।
समझाने में तो असमर्थ हूँ मैं, चली आ, मिल जा, अब छोड़ दे मान॥

तर्जनी के छोर से कपोल छुए जाने पर
तुनक से रूप का घनत्व बढ़ जाता है।
लाख ठुकरा दे, पर प्रेम मरने का नहीं,
ठोकर खा शतगुणा सत्व बढ़ जाता है॥
मुझे मिलने की तू न, इसे जानता हूँ, पर
घट कहाँ जाता है, ममत्व बढ़ जाता है।
मैंने देख लिया और तू भी अब आ के देख
दूरस्थित वस्तु का महत्व बढ़ जाता है॥

यह क्या कम है अनायास जो तूने मुझे अवलोक लिया दृग-कोर से ?
जरा-सा मुझमें जग प्रेम उठा तो कलंक लिया उछला हर ओर से॥
नहीं चोर तो चोर हूँ, देना प्रपीडा मुझे अपने न उरान्तर-रोर से।
कोई हो भी तो जो प्रिया रूपद्युता का कपोल छुए बस तर्जनी-छोर से॥

जो स्मर की मुझमें हुई प्रज्वलिताग्नि भला क्यों बुझाना चहोगी ?
लाल ही तो लिया मैंने कपोल, विचारा कि थोड़ी ढिठाई सहोगी॥
चूमा न चाटा, रहा मन मारके, शंकितातंकित था कि दहोगी।
मैं नहीं जानता था इतने के लिए मुझसे तुम रूठ रहोगी॥

आ-आ के सुन्दरि ! मेरे यहाँ कभी ला-ला के रूप की ज्योति बखेरी।
बैठी-उठी अति मेरे समीप, कहीं नहीं भेद की भावना हेरी॥
प्रेम मुझे उपजा परे तू हुई, निर्मम आँख जो फेरी तो फेरी।
देखो कहाँ किस सूरत से अब देखने को मिले सूरत तेरी॥

आती नहीं मुझसे मिलने, अपने घर भी न बुलाती मुझे हो।
चैन तुम्हारे बिना पड़ती नहीं, क्या मैं करूँ न बताती मुझे हो॥
ईश्वर ने तुम्हें दी है हँसी-खुशी, क्यों दिनरात रुलाती मुझे हो।
ऐसा हुआ अपराध है क्या, इतना किस हेतु सताती मुझे हो ?

पग प्रेम के पन्थ पड़े, अब देखना डेरा-कुडेरा कहीं नहीं है।
जिसे स्नेह का भाजन प्राप्त नहीं उसे हर्ष घनेरा कहीं नहीं है॥
किस भाड़ में यौवन झोंकूँ जो आ रहा प्यारा लुटेरा कहीं नहीं है?
किस काम का जीवन है जिसमें ममता का बसेरा कहीं नहीं है?

मुझसे न ही रीझना ठाने जो है उस निष्ठुर को अनुरागना है।
सदा आग लगाना जो जानती है उससे मधुरानन माँगना है॥
जिसे जीवन-दान अभीष्ट नहीं, मृत जीवन में उसे आँगना है।
अब जो फल हो, फल हो या न हो, नहीं प्रेम के मार्ग से भागना है॥

मम जीवन में किसी और को तो मुद लाना नहीं, तुझे लाना है ला।
रस मेरी रगों में न और कोई कभी ना सकेगा, तुझे नाना है ना॥
तरसा तो चुकी, तड़पा तो चुकी, अलगा तो चुकी, अब आना है आ।
मुझसे यदि पिंड छुड़ाने की ठान है, तोड़ के ही दिल जाना है जा॥

जैसी है प्रीति मुझे तुमसे, अनजानी नहीं वह जानी तुम्हारी।
जो मुझसे मुहँ फेर लिया करनी यह है बचकानी तुम्हारी॥
नित्य उरस्थल से हूँ लगाता जो हाथ लगी है निशानी तुम्हारी।
मिट्टी में मेरी लुभा रहीं शान लुभावनी आदतें शानी तुम्हारी॥

हैं तो कहलाते हम बड़े ही वजनदार,
वक्त की पड़ी जो मार, तूल-तूल पाट ली।
जिसमें नहा लें, मार गोता लें अभीष्ट यह
उस रूप-सागर के कूल-कूल बाट ली॥
नयनाभिराम जो हमारे मन का विराम,
उसके लिए हैं हम शूल-शूल, खाट ली।
झूल प्रेम-झूले में न भूल कर भूले उसे,
एक फूल के ही लिए धूल-धूल चाट ली॥

वह भाले-सी घातक सिद्ध हुई, बड़ी भोली-सी सूरत जो गयी दीख।
जिसके लिए व्याकुल हूँ उससे मिलती नहीं माँगे भी दर्शन-भीख॥
कभी भेंटती थी, दुख मेटती थी, सुनती अब मेरी पुकार न चीख।
जितनी मम प्रीति प्रगाढ़ हुई उतनी वह निष्ठुरता गयी सीख॥

पहले ही धँसी हृदयालय में जो मुझे क्षण एक निहार गयी तू।
बिना दृष्टि के बाण चलाये सलोनी लली कर सैकड़ों बार गयी तू॥
मुझे प्रेम के पाश में बद्ध विलोक उदार विचार बिसार गयी तू।
जितनी गहरी मम प्रीति हुई उतनी कड़ी ठोकर मार गयी तू॥

तव दर्शन से मम जीवन है, इतने के लिए मैं हुआ मजबूर।
मम प्रेम में प्रेम-प्रभा ही तो है, मुहँ मोड़ के क्यों बन बैठी हो क्रूर॥
मुझे मारने को क्यों तुली हुई हो, कुछ सोचो तो मेरी सजीवन मूर ! ।
जितना मैं तुम्हारे समीप हुआ उतनी मुझसे तुम हो गयीं दूर॥

तव दृष्टि किसी पर जानी नहीं है, कोई अनुराग करे तो करे।
किससे कहा तूने कि प्यार करो, अपनी कल कोई हरे तो हरे॥
हर ओर अशंक तू डोलती है, डरने को है प्रेमी डरे तो डरे।
अपनी तुझे मौज में घूमना है, बिना तेरे जो कोई मरे तो मरे॥

मेरी नहीं कुछ तो भी सभी कुछ तू है जहाँ तक मैंने विचारा।
है दुनिया बड़ी, तेरे बिना सुखी जीवन का चलना नहीं चारा॥
अर्चना तेरी किया करूँगा, मन-मन्दिर में तुझे धारा तो धारा।
जो अपना नहीं है अपना वह होता है तो बड़ा होता है प्यारा॥

भेंटने आयी अकेले न आयेगी, जानता हूँ उसकी नियमावली।
अद्भुत हूँ उसीको हृदयेश्वरी मैंने बनाया, हुई मति बावली॥
क्या मिलेगा ? मिले ही कुछ क्या पता, मैंने भली चढ़ प्रीति की नाव ली॥
वर्षों कृपा की प्रतीक्षा करूँगा अजी ! मुझे कोई पड़ी न उतावली॥

भेंटती ही अब तू नहीं है, हमें कैसा है प्रेम जता नहीं पाते।
तू बिछुड़ी तब से हम रो रहे हैं इतना भी बता नहीं पाते॥
प्यार के हैं अपराधी हमी, तुझे क्या कहें तेरी ख़ता नहीं पाते।
वे बिरले कोई भाग्यनिधान हैं, प्रेमिका से जो धता नहीं पाते॥

देखते-देखते तू बिदा हो गयी, ले दुख-भार रहे हम बैठे।
बात भी पूछने आयी महीनों न, सह्य-असह्य सहे हम बैठे॥
तू हमको चहे प्रश्न नहीं, यहाँ हैं कि तुझी को चहे हम बैठे।
तूने सँभाल लिया लड़कीपन, मान-प्रतिष्ठा गहे हम बैठे॥

छायी रहती थी कभी मेरे यहाँ तू ही, अब
आती मिलने ही नहीं, समय का कैसा फेर।
क्या है तुझे, काम बन गया चलती तू बनी,
मेरा क्या बनाया हाल हाय हरिणाक्षि ! हेर॥
तू है ममता-मयी, न निर्ममता-आशा मुझे,
किसी काल तो तू आर्त्त चित्त की सुनेगी टेर।
क्यों तू सुखा कर मुझे काँटा करने को तुली ?
सरासर मुझसे सुखाकर न मुहँ फेर॥

बनवा लिया काम जो शर्त बिना, नहीं फूली समायी अमीर की जादी।
अटका जब काम रहा मुझसे न गयी अटकायी अमीर की जादी॥
गया मारा शराफ़त से मैं, नहीं अब देगी दिखायी अमीर की जादी।
कर सिद्धि अभीष्ट की एक भी बार न भेंटने आयी अमीर की जादी॥

स्वार्थ के तू पिँजड़े से छुटी, शुकी-सी उड़ी, देती कहीं न दिखायी।
काम बना अपना कि टली, कहने के लिए है बड़े कुल-जायी॥
क्या तसबीर दिखा पहले अब क्या तसबीर है सामने लायी!।
तू ममता है निरी ममता, यह निर्ममता कहाँ से सिख आयी?

स्वार्थ निकाल लिया जिनसे, उनका नहीं भूल के तूने किया हित।
तूने उन्हें किया अर्पित क्या, उन्होंने तो किये मन-प्राण समर्पित?
वन्दन तेरा किये जगवन्दन, तू क्यों उन्हें करती नहीं नन्दित?
तू कहने के लिए है कुलोत्तमा, क्या पता कौन सा है तव शोणित॥

काम रहा अटका मुझसे तो मैं तेरे लिए रहा गण्य गुणाकर।
पाँच बजे मिलने को कहा गया, चार बजे खड़ी हो गयी आकर॥
शान बड़ी अब हो गयी, आन-गुमान लिये उखड़ी है बराबर।
मैं तुझे देखे बिना मर जाऊँ तो पायेगी लल्ली! तसल्ली सरासर॥

परकन्या से शुद्धानुराग करूँ, इसका भी मुझे कहाँ है अधिकार!
जिस दृष्टि से तूने लखा वही ठीक, मैं हूँ तो हूँ और न हूँ तो लबार॥
इसमें कुछ भी तेरा दोष नहीं जो सदा के लिए गयी ठोकर मार।
चुकती नहीं थी मेरी दीवानगी तभी तूने दिया अहसान बिसार॥

तुझको नितान्त स्वार्थनिष्ठ मानने से पूर्व
तेरे गुण माला में पिरोने लग जाता हूँ।
निर्ममता निर्ममता तेरी मानता हूँ नहीं,
सामाजिक मञ्जुल विवशता बताता हूँ॥
औसत भी रूप-गुण-शीलयुत देख-देख
चित्त में समग्रता का सौष्ठव बिठाता हूँ।
मेरे बाल-हृदय का कोई नहीं है इलाज,
तेरी याद आती है कि रोने लग जाता हूँ॥

दस-बीस दफ़ा दिये दर्शन हैं, मुझसे अभी से तो ख़फ़ा मत हो।
पड़ संग तुम्हारे मैं मारा गया, तुम पोढ़ी हो जो कि सलामत हो॥
मिलो या न मिलो, चहे जो स्थिति हो, करती सदा मेरी हिफ़ाज़त हो।
मिलती हो तो जानो नियामत हो, नहीं तो तुम प्यारी कयामत हो॥

ऐसी सलोनी है तेरी छटा मुझे टेरे ही टेरे सदा रहती है।
ऐसी रसीली है जीवन-युद्ध में प्रेरे ही प्रेरे सदा रहती है।।
ऐसी कला-भरी तेरी है याद कि घेरे ही घेरे सदा रहती है।
ऐसी हठीली है तू मुझसे दृग फेरे ही फेरे सदा रहती है।।

सीमा वियोग की कोई कहीं नहीं, वर्षों इसी विधि क्या तड़पूँगा ?
प्रेम किया तुझसे है अवश्य, निरा तो निरादर मैं न सहूँगा।।
आना है आ सिर-आँखों के ऊपर, जाना है जा, नहीं पैर पड़ूँगा।
जीवन में बड़े काम पड़े, तुझी को पकड़े तो पड़ा न रहूँगा।।

जिसको भुजा-पाश हमारा प्रवेश्य न, जानते और विचारते हैं।
तिरछी न तो सीधी ही दृष्टि से जो हमें देखती है, अवधारते हैं।।
प्रहरी के बिना मिलती जो कभी नहीं, कैद में काया निहारते हैं।
तन-जीवन-प्राण अजी ! हम तो उसी भामा के ऊपर वारते हैं।।

पग प्रेम-प्रदेश-प्रविष्ट हुए, तज भागूँ तो शोभा मुझे नहीं देता।
तव दर्शनों से बढ़ आगे कभी कुछ माँगूँ तो शोभा मुझे नहीं देता।।
नहीं तू मिलती है तो और को जा अनुरागूँ तो शोभा मुझे नहीं देता।
जहाँ मोह की नींद में सो गया सो गया, जागूँ तो शोभा मुझे नहीं देता।।

अनावृत-आवृत अंग तुम्हारे सभी अवलोकूँ रही रुचि राँच।
सभी सम प्रेमी दृगों के लिए, इसमें न लहे कोई कलमष-आँच।।
तुम्हें यदि शंका तो ले लो परीक्षा, विलोक लो आकर हीरा कि काँच।
परन्तु जुटेगा न नौ मन तेल न आयेगी राधा दिखाने को नाच।।

वरानन से मैं खिलूँ खिल लूँ, मुझे देख के तू खिली जाती कहाँ है ?
लली ! ललचाऊँ क्या तेरे लिए, सँग मेरे घुली-मिली जाती कहाँ है ?
मृगाक्षी सही, विशालाक्षी सही, मुझसे तू भला हिली जाती कहाँ है ?
वृथैऽव मैं चित्त डुलाऊँ तो क्यों, तू सलोनी है तो मिली जाती कहाँ है ?

तुझसे भला क्यों मुझे होता न प्रेम, मिले दुख घोर यही था बदा।
वह मैं न कि प्रेम करूँ फिर छोड़ दूँ, जो है सो है, जो बदा सो अदा।।
मम लोचन मूर्ख हैं, पागल हैं जो तुम्हारी-सी पाते कहीं न अदा।
कितने दिन यों बिछुड़ी रहोगी, मैं तुम्हारा सदा, तुम मेरी सदा।।

समझाने से तू समझेगी नहीं न बुलाने से आयेगी हा ! कहाँ जाऊँ ?
सहनी ही पड़ेगी वियोग-व्यथा, सह पाऊँ मैं चाहे नहीं सह पाऊँ।।
करनी कुछ तेरी भलाई हो तो घर तेरे अशंक मैं दौड़ लगाऊँ।
भला केवल तेरा निहारने को मुँह आऊँ तो क्या मुँह लेकर आऊँ ?

जो मुँह फेर के बैठ रही, जब प्रेम का मेरे हठीला लखा रुख।
विश्व के विस्तृत प्रांगण में जिसके बिना मेरे लिए न कहीं सुख ।।
होता है प्राप्त त्रिलोक मुझे जिसके क्षण मात्र विराज के सन्मुख।
हा ! कोई ऐसा हितैषी नहीं जो दिखा दे मुझे उस योषिता का मुख ।।

कितना अनुराग दिखा गयी तू, अब आके मिले अवकाश न पाती।
कभी तो भली भाँति निहाल किया, अब हाल भी पूछने को नहीं आती ।।
तुझे मेरी व्यथा का सही पता है न, नहीं तो निवारण में जुट जाती।
कितने दुख-भार से मैं लदा हूँ लली ! देख जो पाती तो देख न पाती ।।

जानते हैं घर तेरा कहाँ, पर आतुर दौड़े चले नहीं आते।
फ़ून का नम्बर जानते हैं, तुझे देने को कष्ट न फ़ून उठाते ।।
डूबे तो प्रेम-पयोनिधि में हैं, डुबाव तुझे अपना न दिखाते।
क्या हुआ जो दुखी हैं हम, तू सुखी है यही सोच के हैं सुख पाते ?

तुमसे जो मिला उसे दाबे हूँ मैं, अपना है रसेश, तुम्हें नहीं देता।
तुम्ही दुःख प्रदान मुझे करतीं, दुख में लवलेश तुम्हें नहीं देता ।।
निशिवासर तो तड़पा करता, पर कोई सँदेश तुम्हें नहीं देता।
तुम हो इतनी मुझे प्यारी कि मैं घर आकर क्लेश तुम्हें नहीं देता ।।

हमने दिया हृदय, तू दे कुछ चाहे नहीं,
प्रतिदान के लिए न दान दिये बैठे हैं।
और मिले चाहे नहीं, जो मिला वही क्या कम,
रूपामृत मर मिटने को पिये बैठे हैं ।।
तू ही यदि आये तो मिलन होगा, अन्यथा न,
हम भी तो भद्रता-विधान लिये बैठे हैं।
कैसे आ सकेंगे भला तेरे द्वार पर अब,
प्रेम करने का अपराध किये बैठे हैं ?

रोता तुम्हारे बिना दिनरात, तुम्हें लख अश्रु की धारा बहाता।
मेरे बुलाने से आया करो मत, मैं वृथा ही तो तुम्हें हूँ बुलाता ।।
रोदन मेरा विलोक सुलोचने ! होगा तुम्हारा भी जी दुख जाता।
झेलूँगा कष्ट तुम्हारे बिना, तुम्हें होना न चाहता कष्टप्रदाता ।।

प्रेम के अश्रु बहाता हूँ मैं, तुम तो इसके लिए अश्रु न मोचो।
मेरा जो भाग उसे मुझे दो, कृपाभाव न मुट्ठी के बीच दबोचो ।।
आया करो मिलने को कभी-कभी, व्यर्थ ही मेरा कलेजा न नोचो।
थोड़ा सा कष्ट उठा कर आती, अपार प्रसन्नता देती हो सोचो ।।

यह तू जो वियोग-व्यथा दे गयी उसका अनुवासर भार बढ़ेगा।
इसे तू ही उतारने आये तो आ, नहीं तो वह सातवें व्योम चढ़ेगा॥
सही तू समझे तो मुझे समझे, जग तो वही एक कलंक मढ़ेगा।
हृदयेश्वरि ! भाषा समाश्रुओं की नहीं तू पढ़ती है तो कौन पढ़ेगा ?

व्यवधान के शैल जो तूने खड़े किये सारे के सारे ढहाने पड़ेंगे।
खड़ी सामने मेरे समस्या बड़ी है, तपस्या के दौर चलाने पड़ेंगे॥
जुड़े स्वर्णिम देह से स्वर्णिम भाव प्रभावी अवश्य बनाने पड़ेंगे।
तुझ निष्ठुर के लिए तो अरबों-खरबों मुझे अश्रु बहाने पड़ेंगे॥

लह दृष्टियों का अवलम्बन लीलया रूपरसाम्बुधि थाहते हैं।
यदि प्रेम-हुताशन में कभी दाहते तो अपने को ही दाहते हैं॥
रह सामने या रह आँखों की ओट, यही हम नेम निबाहते हैं।
तुझसे कुछ भी नहीं चाहते हैं, फिर भी तुझको हम चाहते हैं॥

तू कहाँ से मुझे आ के मिली, मिलते-मिलते तो थमा गयी प्यार।
कैसे कहाँ क्या दशा उसकी फिर फूटी भी आँखों सकी न निहार॥
मैं तो तुझे बड़ा अप्रिय हूँ, मुझे तेरे बिना न कहीं सुखसार।
एक ही बार आ और, रहा-सहा भी हृदयाम्बर मेरा विदार॥

ठहराया जिसे कभी आदरणीय उसीका अनादर क्या भला काम ?
तुम्हें मैंने बुलाया तो जीवनवल्लभे ! क्यों मिल जाती नहीं गुणधाम ?
इस बार तो आओ चली, फिर और बुलाऊँ तो आने का लेना न नाम।
गिरना हुआ तो गिरूँगा कहीं हा ! तुम आकर हाथ तो लोगी न थाम॥

दृगधाम में रूप तुम्हारा धँसा, कहीं और न रूप रहा हूँ निहार।
वह झाँकी अनूपम प्राण-समा किसी भाँति कभी न सकूँगा बिसार॥
मिलने तुम आओ न, मैं कभी आऊँ तो तेरे हितू जन दें दुतकार।
तुम्ही को परमेश्वर रक्खे सुखी, अपराधी मैं ढोया करूँ दुखभार॥

छोड़ूँगा तेरे लिए मैं सभी कुछ, मोहिनि ! तू मत जा मुझे छोड़।
मोड़ूँगा सारे जहान से मैं मुहँ भामिनि ! तू मुझसे मत मोड़॥
स्वार्थ को मेरे न साध, परीक्षा ले, ले जा सभी कुछ, दे मुझे गोड़।
और के हेतु हैं सैकड़े सोचने, तू ले तो हाजिर लाख करोड़॥

देखूँ मम भाव-कान्ति कैसे देखती है नहीं,
मुहँ खोलने दे, कुछ कह भर पाने दे।
मुझे निज वाग्बल की बलवती है प्रतीति,
धीति-मुख-भञ्जनी स्वप्रीति समझाने दे॥
सामने दृगों के जरा नाने दे हृदय-रस,
बात मुझे केवल बनाने या बनाने दे।
बिकट विकट मान सारा हर लूँगा प्रिये !
एक बार अपने निकट बैठ जाने दे॥

तेरे पास मेरा धरा हृदय है, तू मधुर
अपना हृदय भर मेरे पास धर जा।
मम प्राणकान्ते ! तुझसे है हेमकान्त प्रेम,
मुकर सके तो आ, समक्ष आ मुकर जा॥
आज जलते हैं तव विरह में वे कल ही
जायेंगे चिता में जल, मेधा-मध्य भर जा।
तेरा प्यार जिनमें समाया हर ओर, कुछ
इन लोचनों से करना हो प्यार कर जा॥

जब प्रेम किया तब जान पड़ा नहीं क्या करता हूँ, न क्या करता हूँ।
तब सर्जित की सुख की प्रतिमा, अब अर्जित शोक-व्यथा करता हूँ॥
दिन दो मिलके चलती बनी तू, किया मित्रों में तेरी कथा करता हूँ।
अब वासर आ गये ऐसे कि मैं तुझे देखने को तरसा करता हूँ॥

दिन देखे जो देखे न जा रहे हैं वही तू मुझे लाके दिखा रही है।
बिना स्वार्थ किसी का न कार्य करो, यही अज्ञों का ज्ञान सिखा रही है॥
जिस भाग्य से वर्षे हँसी के प्रसून उसी में रुलाई लिखा रही है।
मुझे आपदमस्तक दग्ध किया जने कैसी तू दीप-शिखा रही है॥

प्रिय प्रेम-प्रदेश विलोक लिया जिसमें बढ़ता पग है रुचता।
तव सुन्दरि ! श्री-नग है रुचता, रँग है रुचता, ढँग है रुचता॥
पर निष्ठुरता कितनी तुममें, न करो क्षण को सँग है रुचता।
जबसे मुझसे तुम दूर हुईं तबसे न मुझे जग है रुचता॥

जब मेरे समीप विराजती थी महामोद प्रसारती मञ्जुल काया।
अपने से यही कहता रहा मैं, मिले से कर तोष लो जैसे हो भाया॥
कहने के लिए रह जाये नहीं कि मैं जी भरके उसे देख न पाया।
हुई स्वार्थ की सिद्धि तो क्या पता लौट के आये न आये दिखाने को छाया॥

सूरत तो है सलोनी लिये हुए, प्रीति की क्यों मजबूरी न जानती ?
और किसी से भी रञ्च नहीं, तुझी से मम प्रीति है पूरी न जानती ॥
देखने को दिखती ममता-भरी, निर्ममता है अधूरी न जानती।
वर्षों हुए, पर कैसी है तू मुझसे मिलना जो जरूरी न जानती ॥

झलकी दिखला करके उनका मृदु चित्त चलाचल तूने किया।
जिसमें भटके कविराज, मनोरथों का बड़ा जंगल तूने किया ॥
हुए वर्षों चुकी न वियोग-व्यथा, कितना उन्हें पागल तूने किया।
रही दंगल-दंगल-ही करती, नहीं प्रेम का मंगल तूने किया ॥

गगनस्थित पुष्प तू मेरे लिए है लली ! मैं तुझे किस भाँति लहूँगा ?
विरहानल में ही मुझे दहना बदा है तो भला नहीं कैसे दहूँगा ?
तुझे जो है सहाना सहा ले सभी अनाचार तेरे चुपचाप सहूँगा।
कभी देवी-स्वरूपिणी जाने रहा, अब कैसे कोई अपशब्द कहूँगा ?

खलु तेरे निवास के आस ही पास कोई मँडरा रहा है अरी ! ध्यान दे।
वह ऐसे शरीर से जो दिखने का न बोलने का, तू उसे कुछ मान दे ॥
तिमिराम्बुधि-मज्जिता भावना-शर्वरी को वनिते ! द्युतिवन्त विहान दे।
मरा जा रहा तेरा अनन्यानुरक्त है, जा उसे जाकर जीवन-दान दे ॥

रहती किस ओर है प्रेमी को वेदना जो घनघोर थमाये हुए।
किस नाम की है किसकी सुता क्रूरता-संयुता दीप्ति दिखाये हुए ॥
कर लो पता मित्र ! किसीसे किसी विधि आशयोद्देश्य छिपाये हुए।
जरा देखें तो कौन कुलक्षणा है इतना कवि जी को सताये हुए ॥

मुझको तज और कहीं अब भामिनि ! भाग के जाने का नाम न ले।
रुचि पीस हो डालने की तो नहीं ? भला क्या करेगी अदना मन ले ?
अनयी प्रणयी विनयी खड़ा है, अरे ! देख के तू हरि-नाम न ले।
मर जाऊँगा रो-रो के तेरे बिना, इससे अपना कर नाम न ले ॥

तीर चलाने में हैं प्रवीण बड़े तेरे नेत्र,
भोले भले-भले कहने के लिए तामरस।
किसके लिए न व्यथा-मूल विश्व में है बना
प्रेम-पथ धावन में आलियों का आलकस ?
चलो बड़ा अच्छा है कि तेरा भी चलन यही,
मत मिलने आ, कृपा न कर, न खा तरस।
घनी रस-वर्षा कविजन देखते हैं वहीं,
जहाँ एक बूँद भी बरसात नहीं है रस ॥

मौज लिखी है तो तेरे लिए, बिधना की लिखी हुई मार मुझे है।
तू है वियोग का कोड़ा चला रही, प्यार का भूत सवार मुझे है।।
तू कुछ सोचती है न विचारती, सारे विचार का भार मुझे है।
थोड़ा-सा रूप तुझे जो मिला है उसीसे असीमित प्यार मुझे है।।

न मिली हो अभी तक तो न कभी मिलना, यही प्यार की ठीक सज़ा है।
किया मैंने जो है वह बेजा बड़ा, किया जो कुछ तूने सरासर जा है।।
मुझे क्या कम जो हृदयालय में तुझसे वर रत्न गया सिरजा है ?
मिलने में भला मधु क्या धरा है ? विरहाग्नि में ही जलने में मज़ा है।।

ममता मिलती तो मैं क्या करता जिसके लिए व्याकुल था मतिमन्द ?
प्रमदा लगती नहीं हाथ, यही करता है कृपा प्रभु सच्चिदानन्द।।
चलो अच्छा हुआ व्यवहार में तेरे जो स्वार्थ का नारा रहा है बुलन्द।
किसीकी यह निष्ठुरता ही तो है जो रसीले-रँगीले रचाये है छन्द।।

विरहाग्नि सहा के रही, सह आके हुई वश 'हा' के सुवर्णलता।
न कहीं गुण-सज्जित शील-निमज्जित, है उसकी छवि की समता ?
उसने दिन एक दिखायी न सुन्दर प्रेमापराध-क्षमा-क्षमता।
मिली निर्ममता ही किसीकी, नहीं मिलने को हुई ममता वमता।

विरहाग्नि सहा के रही सह आ के, हुई वश 'हा' के सुवर्णलता।
न कहीं गुण-सज्जित शील-निमज्जित है उसकी छवि की समता।।
उसने दिन एक दिखायी न सुन्दर प्रेमापराध-क्षमा-क्षमता।
मिली निर्ममता ही किसीकी नहीं, मिलने को हुई ममता वमता।।

तूने तो रक्खा भुला के उन्हें, पर वे स्मृति तेरी किये हैं सरासर।
तूने तो रक्खा भगा के उन्हें, पर वे तेरे पास बने निशिवासर।।
तूने तो रक्खा झुला के उन्हें, पर वे च्युति तेरी न चाहते जा कर।
तूने तो रक्खा रुला के उन्हें, पर वे तेरा नाम किये हैं उजागर।।

मिलते ही जो तूने किया वह पूर्वप्रणाम तो मेरे ही साथ चलेगा।
पहले दिखा रूप जो था वह नेत्राभिराम तो मेरे ही साथ चलेगा।।
फल प्रेम के पादप में न लगे, परिणाम तो मेरे ही साथ चलेगा।
तेरा चाम न साथ चले न चले, पर नाम तो मेरे ही साथ चलेगा।।

लिख तो रखी थी, छप भी गयी है, अब तो चली, दौड़ गली-गली जाती।
कृति है यह ऐसी कि मैं डरता हूँ जो मेरी ही जाँघ को खोल दिखाती।।
अब जाने कहाँ-कहाँ क्या-क्या करे, हर ओर है वर्षती धूम मचाती।
'रस-वर्षा' न हाथ तुम्हारे पड़े, फट जाये तुम्हारी न कोमल छाती।।

यह तू जो थमा के गयी है वियोग उसीका विषाद कहाँ चला जायेगा ?
जिसमें परिपीडा भरी हुई है वह प्रेम-प्रसाद कहाँ चला जायेगा ?
सहजैऽव जो शान्त न होने को है वह व्यग्र विवाद कहाँ चला जायेगा ?
नहीं तेरा उरान्तर भेदेगा तो इन छन्दों का नाद कहाँ चला जायेगा ?

प्रेमी हूँ तुम्हारा मैं परन्तु प्रणयान्ध नहीं,
तेरे पतिदेव से जो जल-भुन जाऊँगा।
मेरी हृदयेश्वरी जिसीके जा हृदय लगी,
मैं तो उसे पाऊँ तो हृदय से लगाऊँगा॥
मेरे कृष्ण ने जो वंशी अधर-सुधा से भरी,
क्या मैं उसे तोड़ रविबाला में बहाऊँगा ?
कवियों की मैं नादान गोपी नहीं हूँ 'दयालु',
वंशी कृष्णकान्ता से तो दृष्टि-कान्ति पाऊँगा॥

॥ उत्तरधारा ॥

जिस पर बैठ बड़ी चैन से पसारे पैर,
देखे अनदेखे किये कीले उस तख़्त में।
जान-बूझ कर डाल दिया हाथ आग-बीच
इधर-उधर दिल की दिलेर गश्त में॥
क्या न जानता था तुझे कामसूत्र-काया अलि !
पढ़ता ख़याल रहा जाने किस ख़फ़्त में ?
अब क्या करूँगा यदि तू न मिलने को हुई,
रफ़्ता-रफ़्ता पड़ा तेरे इश्क की गिरफ़्त में ?

सब जीवन सञ्चित ज्ञान किया, पड़ी सामने तू हवा हो गया सारा।
तुझे देख के जो उपजा महामोह, भला कहाँ है उससे छुटकारा ?
तुझसे अब मेरा उबार नहीं, कभी होगा उबार तो तेरे ही द्वारा।
तज सोच-विचार, ले सोच-विचार तू, मैंने भला-बुरा सोचा-विचारा॥

सब वार के बैठा हूँ झेल के मैं अनायास तेरे दृग-बाण का वार।
मम कामना की बगिया में न तेरी जवानी बिना कभी आनी बहार॥
चली आ बन जा मेरे कण्ठ का हार, है जीवन भार तुझे न निहार।
दिये वर्षों बिता, तू क्या है वनिता ! अब तो सुध लेगी कि डालेगी मार ?

भद्रकुलोचित आनन-कान्ति, सजाव-बनाव से मारा गया हूँ।
कैसे कहूँ स्मर-पोषक तेरे अदूषित भाव से मारा गया हूँ॥
चञ्चलचित्त हूँ मैं, तव चन्दनर्चाचित चाव से मारा गया हूँ।
क्या करूँ तेरे सलोने सुधान्वित सीधे स्वभाव से मारा गया हूँ॥
परिपीडित मैं स्मरोत्पात से हूँ, तुम्हें क्या हुआ है जो बनी श्रमणी हो ?
महाशोक-समुद्र से पार उतारने को अब एक तुम्ही तरणी हो॥
तव सन्निधि है मम चिन्ता-विमुक्ति, उरान्तर मञ्जुल चिन्तामणी हो।
रह पाऊँगा कैसे तुम्हारे बिना रमणी! तुम्ही तो जग में रमणी हो ?

मेरी बनोगी ही नहीं, शपथ तुम्हारी क्यों है,
जैसा हूँ विकारी-अविकारी मैं तुम्हारा हूँ।
रूप के कटोरे में तुम्हारे स्नेह-दान देने
आतुर चला हूँ, यों भिखारी मैं तुम्हारा हूँ॥
विधि का विधान है जो मेरे सामने आ पड़ी,
तू है सदा भारी, सदाभारी मैं तुम्हारा हूँ।
हाय! मुझसे तो रूठ बैठो मत प्राणेश्वरि!
पूजनीय होकर पुजारी मैं तुम्हारा हूँ॥
कहाँ सड़ी-गली दुनिया में घूमती है लली!
प्रेम-गली में आ दुनिया की गली छोड़छाड़।
वासर अकेले किसलिए करती व्यतीत,
मैं ही हूँ अकेलापन झोंकने के लिए भाड़॥
रूपछटा-धाम तेरे यौवन की निधि पर
हाथ मैं बढ़ाऊँ, सिकुड़े तू राग-रंग ताड़।
मेरे साथ हो तो ले विराजमान वनजाक्षि!
प्रेम के पहाड़ से न तेरे दबेंगे पहाड़॥

हीरक हीरक हीरक हीरक हीरक हीरक हीरक जान! ले।
नन्दन नन्दन नन्दन नन्दन नन्दन नन्दन नन्दन, जा न, ले॥
आ चल आ चल आ चल आ चल आ चल आ चल आ चल, जान ले।
ते मम ते मम ते मम ते मम ते मम ते मम ते मम जान ले॥

ध्यान कब आता मम विरह-व्यथा का तुम्हें,
मैं तो हूँ बुलाता, तुम टाल-टाल जाती हो ?
पास बैठती हो उठती हो सदा स्वार्थ-वश,
मेरी ममता से बच बाल-बाल जाती हो॥

रञ्चस्पर्श बिना रह सकता कदापि मैं न,
लाल-लाल आती, चुप लाल-लाल जाती हो।
कैसे प्रणयानल प्रदीप्त प्रमदे हो नहीं,
रूप-घृताहुति तुम डाल-डाल जाती हो ?

आयी चली मुझसे मिलने तो किसी मिष स्वार्थ में हो लवलीना।
दृष्टि से मार के मार के तूने हवाले किया मुझे आ गया जीना॥
किन्तु अँदेशा जो था वही तो हुआ, मर्मव्यथा सुनते चल दी ना ?
हाय! मुझे विषमस्थिति में तज जा री! न, जा री! न, जा री! न, री! ना॥

तेरे हजारों प्रकार के नाते हजारों से हैं, तू कुटी-कुटी जाती।
ऐसा नहीं मुझसे कोई नाता कि दौड़ती आँखों के सामने आती॥
आयी थी पास किसी मिष, गर्ज निकाल के सूरत है न दिखाती।
चैन मुझे भला कैसे पड़े अरी! हाथ में आ कर है छुटी जाती॥

आती मिलने थी तब फूल-सम आनन से
प्यारी! तू हजारों फूल झरा-झरा जाती थी।
एक-एक झलक में एक-एक भंगिमा से
मेरे चित्त में प्रमोद भरा-भरा जाती थी॥
आज हम एक हैं, अनैक्य पहले था, तब
धोखेधड़ी में ही रस हरा-हरा जाती थी।
इस मिष, उस मिष छूता मैं सलोना गात,
क्या तू जानती थी नहीं, बरा-बरा जाती थी॥

आसिष चाहते हैं ये खड़े, कर जोड़ के शीश नवाये हुए हैं।
आ, कभी तो चली आ, चली आ, तेरी टेर ये आर्त्त लगाये हुए हैं॥
तू इनकी जननी है, छटा तव देखने को अकुलाये हुए हैं।
छन्द ये मेरे बनाये हुए, पर तेरे ही तो बनवाये हुए हैं॥

छन्दमय इनका कलेवर परम पूत,
इनसे न रूठो, इनका तो थाम कर लो।
इनका विधान कहता है जो उसीको मान,
मान रखने को ही अमान को सकर लो॥
जो समय है हृदयस्वामिनि! वही तो है न ?
पद-भृत्य के तो न वरण से मुकर लो।
मैं हूँ इन छन्दों का जनक, जननी हो तुम,
क्या हम परस्पर हुए विचार कर लो॥

विधि जैसे चहे अब प्रेम के पादप में फल का परिपाक करे।
जिसे देखे बिना न मुझे कल है वह भूल के मेरी न ताक करे॥
अब तो सब देखना ही पड़ेगा, चहे जो भी रसाल की फाँक करे।
इन छन्दों में आग निकाल न दूँ तो मुझी को जला कर खाक करे॥

जिसमें किया पुण्यपदार्पण है उस प्रेम के पन्थ खलेंगे, खलेंगे।
तुझ निष्ठुर नागरी से अटका मन, हाँ ! हम हाथ मलेंगे, मलेंगे॥
सुध तू नहीं लेती है तो विरहाग्नि में हेम-सरीखे गलेंगे, गलेंगे।
किसीके लिए घातक हों हों, हमारे तो काव्य के बाण चलेंगे, चलेंगे॥

मुझसे अलगायी रही जो सदा, ध्रुव प्रीति उसीसे तो मैंने लगायी।
किसी काम का हो जिसे भा गया मैं, हर काम की हो के मुझे वह भायी॥
जिस गो-रटी ने मम गायी गुणावलि, मैंने उसीकी गुणावलि गायी।
अब भी नहीं बूझो तो क्या करूँ मित्र ! अरे ! बड़ी सीधी पहेली बुझायी॥

मेरे लिए तो है नहीं तेरा रस-घट बना,
जहाँ भी ढरकना हो ढरक के रह जाय।
जा तू कहीं स्वर्गोपम सुख भोग चाहे लली !
तेरा श्रीचरण धाम नरक के रह जाय॥
कस कर मुट्ठी में रुठाई बन्द कर रख,
ऐसा न हो अम्बुज से सरक के रह जाय।
तेरे हाथ जान जान जा न 'रस-वर्षा' पड़े,
छाती कहीं तेरी हा ! न दरक के रह जाय॥

दैवी-मानवीय किसी रूप से किसी प्रकार
चित्त का सलोना हुआ उपकार चाहिए।
मृदु मधुमंजिमा का चाहिए मिलन या तो
निर्मम वियोग की कठिन मार चाहिए॥
दृष्टि चाहिए जो चाल लोक की विलोक सके,
भाषा पर भावनिष्ठ अधिकार चाहिए।
कोई नहीं छन्द है कवित्त-सवैया से श्रेष्ठ,
हाँ ! कवित्तकार-सा कवित्तकार चाहिए॥

❀:—:❀